योनितन्त्र

प्राच्य प्रकाशन

योनितन्त्र

(मूल एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक

विनय कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन

लमही, (वाया—सारनाथ) वाराणसी २२१००७

प्रस्तावना

आगम और तन्त्र दोनों पर्यायवाची पद माने गए हैं। आगम अनादि परम्परा प्राप्त माना गया है। जैसा कि उल्लेख है कि भगवान् शिव ने अपने पाँच मुखों—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान द्वारा भगवती पराम्बा पार्वती को तन्त्रों का उपदेश दिया तथा ये तन्त्र श्रीमन्नारायण भगवान वासुदेव को भी मान्य हुए और तदनुसार ही पूर्व, दक्षिण,

आगतं शिव वक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजा श्रुतौ।
मतश्च वासुदेवेन आगम सम्प्रवक्षते।।

पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व ये पाँच आम्नाय तन्त्रों में प्रचलित हुए। कलियुग में आगम मार्ग को अपनाए बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती, साथ ही, आगम सार्ववार्णिक है जबकि निगम त्रैवर्णिक। उल्लेख है कि वैदिक आचार सत्ययुग, स्मृत्युपदिष्ट आचार त्रेतायुग, तथा पौराणिक आचार द्वापरयुग तथा आगमोक्त्य आचार कलियुग में मान्य है। जैसा कि कहा गया है—

कलौ श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृति सम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तं कलावागम सम्भवः।।

यदि शब्द व्युत्पत्ति पर विचार करें तो आगम शब्द 'आ' उपसर्गपूर्वक गति अर्थवाले गम् धातु से बनता है। 'आ' उपसर्ग का अर्थ चारों तरफ यानी सर्वत्र व्यापक रूप से होता है। तात्पर्य यह हुआ समग्र ब्रह्माण्ड में व्यापकता प्रदान करने वाला या व्यापक गति प्रदान करने वाला ज्ञान ही आगम है। जैसा कि शास्त्रों में आया है निश्चित रूप से तत्त्व की ओर ले जाने वाला निगम तथा आप्त वचन से आविर्भूत तत्त्वार्थ विशेष का संवेदी आगम होता है। वैसे उल्लेख आता है कि—

आङ् भावस्तु समन्ताच्च गम्यतेत्यागमोमतः।

अर्थात् सर्वतोमुखी अध्यात्मज्ञान जो सर्वतः प्रसृत हो चतुर्दिक व्याप्त हो रहा है वही आगम है। गत्यर्थक धातु ज्ञानार्थक भी होते हैं। यह पिङ्गला सिद्धान्त है। शैवमत के अनुसार आ = पाश, ग = पशु और म = पति है। अथवा आ = शिवज्ञान, ग = मोक्ष और म = पति हुआ। यह तन्त्र यानि शास्त्र कहलाता है, क्योंकि इसके द्वारा ही सब कुछ शासित होता है,

सुरक्षित होता है, स्थिर होता है। प्राणिमात्र ही रक्षा या 'त्राण' करने के कारण भी यह तन्त्र कहलाता है। जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार हो वह शास्त्र तन्त्र कहलाता है—

तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्।

तत्त्व, मन्त्र, देवता, साधनाविधि, फल आदि सभी का वर्णन जिसमें हो तथा जो साधक की रक्षा भी करे वह शास्त्र या विद्या अथवा ज्ञान तन्त्र कहलाता है। यह शब्द विस्तार अर्थवाले तन् धातु से औणादिक 'ष्ट्रन' प्रत्यय करने पर बनता है। (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्)। जैसाकि उल्लेख है—

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते।।

तन्त्रों के अनेक भेद हैं। मुख्यतः ६४ माने गये हैं। उनमें भी शैव, शाक्त फिर वैष्णव, बौद्ध और जैन भेद से बहुसंख्यक हो जाते हैं। माना यह गया है कि सभी का आविष्कार भगवान् शिव के द्वारा ही हुआ है। जैसा कि उल्लेख है—

बौद्धोक्तमुपतन्त्राणि कापिलोक्तानि यानि च।
गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।।

कहा जाता है कि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शती में शरहा नामक बौद्ध भिक्षु ने सिद्ध परम्परा के आचार्यों से कौलाचार परम्परा की शिक्षा प्राप्त कर उन उपासना पद्धतियों को बौद्ध श्रमणों में प्रचार किया और उसकी वज्रयान शाखा को पल्लवित पुष्पित किया। इसी शरहा की परम्परा में गुरु पद्मसम्भव हुए, वे परम सिद्ध थे। अनेक प्रकार की व्यावहारिक सिद्धियाँ उन्हें प्राप्त थीं। तिब्बत के धर्म गुरुओं को परास्त कर वहाँ सिद्ध साधना की तान्त्रिक पद्धतियों को प्रचलित किया। आगे चलकर वही लामा धर्म हो गया। परन्तु वज्रयानियों ने तथा वैष्णवों ने भी सिद्ध परम्परा के परमशुद्ध रूप को यथावत् रूप मे स्थिर न रखकर शैनः शैनः उसके विकृत रूप को ही प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थों की रचना की। सिद्ध परम्परा में कतिपय साधना पद्धतियाँ रहस्यमयी हैं जिन्हें प्रकट करना निषिद्ध माना गया, क्योंकि उसके रहस्य को समझने में असमर्थता के कारण साधारण साधक

पथभ्रष्ट हो सकते हैं। परन्तु वज्रयानियों द्वारा चीनाचार के ग्रन्थों में उन अप्रकटनीय रहस्यमयी साधनाओं का स्पष्ट वर्णन कालान्तर में होने लगा और उनकी तुलना में शाक्त सम्प्रदाय के साधक आचार्य भी वही करने लगे। फलस्वरूप पञ्च मकार साधना या वामाचार का प्रचलन हुआ। यद्यपि वर्तमान में दक्षिण मार्ग या दक्षिणाचार साधना पद्धति को पञ्च मकार रहित शुद्धविद्या–साधना के रूप में समझा जाता है। किन्तु आचार्य अभिनव गुप्त ने "दक्षिणं रौद्रकर्माढ्यम्" कहकर कापालिक पाशुपत साधकों के आचार श्मशान, चिताभस्मालेप, कपालधारण तथा मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि घोर षट्कर्म साधना की ओर संकेत किया है।

वाम का अर्थ विपरीत होता है। प्रायः यही अर्थ सबलोग लेते हैं, किन्तु वस्तुतः वाम का अर्थ सुन्दर मनोरम या हृद्य मन से अच्छा लगने वाला होता है। मांस, मत्स्य, मद्य, मुद्रा और मैथुन–ये पञ्च मकार सभी के मन को प्रायः अच्छे लगते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार वामाचार से व्यावहारिक सिद्धियाँ अत्यधिक मात्रामें प्राप्त होती हैं। "वाम सिद्धिसमाकुलम्"। फलस्वरूप साधक उसी में लिप्त हो जाता है और आध्यात्मिक मार्ग से भटक जाता है तथा अन्त में उन भौतिक सिद्धियों के उपयोग और उपभोग से पथभ्रष्ट होकर पतित हो जाता है। भैरवागम के अनुसार दक्षिणाचार से वाम उत्तम तथा वाम से सिद्धान्त मार्ग उत्तम तथा सिद्धान्त से भी कौल मार्ग उत्तम है। परन्तु तन्त्रों की अनेकरूपता के कारण श्रेष्ठ गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग का ही आचरण करना चाहिए।

दक्षिणादुत्तमं वामं वामात्सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरं न हि।।
तन्त्राणां बहुरूपत्वात्कर्तव्यं गुरुसम्मतम्।

कुलाचार को श्रेष्ठ बतलाया गया है; किन्तु वाम के समान कौल मार्ग में भी पञ्च मकार का प्रयोग है। यद्यपि यह गुप्त रूप से कुलचक्र के अन्दर ही चक्रयाग के अवसर पर किया जाता है। यहाँ आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि विषयभोग के आनन्द की दृष्टि से पञ्च मकार का प्रयोग करनेवाले तथा बिना पञ्च मकार के कुलचक्र याग करने वाले दोनों ही प्रकार के साधक नरकगामी होते हैं।

आनन्दकृत्रिमाहाराः तद्वर्जं चक्रयाजकाः।
द्वयेऽपि नरकं यान्ति..........

तथापि अभिनवगुप्त इस प्रकार की साधना का रहस्य समझाते हैं। तदनुसार अधिकारि भेद से तथा व्यक्ति की मनः शक्ति की भिन्नता के कारण शास्त्रों में भेद किया गया है–

"चित्तभेदान्मनुष्याणां शास्त्रभेदो वरानने"। योग और मोक्ष ये दो जीवन के मुख्य उद्देश्य हैं। जिसमें योग की भावना प्रबल होती है वह मन से मुक्ति की साधना नहीं कर सकता क्योंकि उसका मन भोग में लिप्त रहेगा भले ही वह बाह्यरूप से विरक्त हो जाये। ऐसे व्यक्तियों को भोग से विरक्ति उत्पन्न होनी चाहिए और विरक्ति तभी होगी जब वह भोग के रहस्य को उसके अन्दर डूबकर जानेगा। उसकी नश्वरता और अल्पकालस्थायिता को समझेगा। इस हेतु भोग में भी भक्तिभाव आ जाये इसके लिए देव–देवी भाव को हृदय में स्थापित करते हुए "पूजा ते विषयोपभोगरचना" की भावनानुसार साधना करते हुए भोग के भौतिक भाव को भुलाकर उसके अध्यात्म और अधिदैव भाव की ओर साधक बढ़ता रहे। यही भाव इस साधना का है। क्योंकि कहा गया है कि "इन्द्रियाणि हयानाहुः" इन्द्रियाँ घोड़ों के समान हैं; और इन घोड़ों का अभ्यस्त मार्ग दिषयों की ओर का मार्ग ही है। यदि बलपूर्वक उनको उस मार्ग से हटाकर यकायक सर्वथा अपरिचितपूर्ण वैराग्य–शम–दम–तितिक्षा–उपरति आदि के मार्ग पर चलाने की चेष्टा की जायेगी तो वे बिगड़कर अनेक उल्टे–सीधे मार्गों पर जायेंगी क्योंकि उनका चालक मन है। जैसा कि कहा है:

स्वयं पन्थानं हयस्येव मनसो ये निरुन्धते।
तेषां तत्खण्डनाऽयोगाद् धावत्युत्पथकोटिभिः।।

बलपूर्वक मन को वैराग्य में लगाने का विपरीत प्रभाव हो सकता है। अतः मर्यादित विषयोपभोग करते हुए मन्त्र जप, पूजा योग आदि का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास साधक आत्मानुभूति या आत्मप्रत्यभिज्ञान की ओर शनैः शनैः विषयानन्द से विरक्ति और स्वाभाविक अरूचि उत्पन्न होने के कारण ले जा सकता है। इस प्रकार वैराग्य को अनादर विरक्ति कहा गया है।

अनादर विरक्त्यैव गलन्तीन्द्रियवृत्तयः।
यावत्तु विनियभ्यन्ते तावत्तावद्विकुर्वते।।

कारण यह है कि सत् चित् आनन्द ये तीन ब्रह्म के स्वरूप हैं, जो वस्तुतः एक ही है। जहाँ जहाँ भी यत्किञ्चित् आनन्द की मात्रा है; वह ब्रह्म का ही रूप है भले ही वह पूर्ण प्रस्फुरित न हो। पूर्ण ब्रह्मानन्द और विषयानन्द दोनों में भेद अनन्तता और क्षणिकत्व का है। आनन्द जिसके निजानन्द निरानन्द, जगदानन्द आदि ६० भेद वर्णित हैं ब्रह्म का प्रथम प्रारम्भिक स्वरूप उस आनन्द की अनुभूति करते करते उसके बाह्य रूप विषयों का विलापन होने पर ब्रह्म के चित्स्वरूप की अनुभूति होती है। आनन्द चिद्रूपता में परिवर्तित हो जाता है और वह चिद्रूपता साधना करते करते सत् की स्थिति में या सन्मात्रा रूप में प्रतिष्ठित होती है। यही है असत् से सत् की ओर यात्रा–"असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।"

बाह्य विषयानन्द ही तम है, मृत्यु है, पर उसकी अनुभूति करनी पड़ती है। उससे गुजरे बिना उसके प्रति अनादर, अनिच्छा, अस्थायित्व, नश्वरता का भाव नहीं उभर सकता क्योंकि विषय आयात रमणीय तो होते ही हैं। पञ्चम मकार की साधना के द्वारा विषयानन्द की प्रथम अवस्था को पार करते हुए आनन्द की अन्तिम अवस्था जिसे जगदानन्द भी कहा गया है; की अनुभूति होने पर परिमित से अपरिमित में, ससीम से असीम में प्रवेश होता है। यह जगदानन्द परमेश्वर का वह स्वभाव है जिसके कारण वह सृष्टि स्थिति संहार लीला करता रहता है। क्षणिक विषयानन्द की पराकाष्ठा पर पहुँच जाने पर मिथुन या युगल भैरव–भैरवीरूपता का अनुभव करते हुए जगदानन्द में चिरलीनता पर समावेश और स्थैर्य की ओर बढ़ता रहता है। उपनिषद कहता है कि स्त्री–पुरुष या पति–पत्नि एक भाव के दो रूप हैं। परमेश्वर एक था और लीला के लिए उसी पुरुष के दो भाग स्त्री–पुरुष के रुप में किये। स एकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास। यथा स्त्री पुमांसौ परिष्वा क्तौ स। इयमेवात्मानं द्वेधाऽपातयततः पतिश्च पत्नी चाऽभवताम्। एक से दो और दो से रमण के द्वारा ऐक्य सम्पादन। यही तो रहस्य है। इसी में परमेश्वर की विसर्ग शक्ति (सृजन शक्ति) और जीव की

विसर्ग शक्ति दोनों का प्रकार एक ही है और एक के द्वारा अन्य को पाया जा सकता है बशर्ते कि ध्यान उसी अपरिमित असीम की ओर केन्द्रित रहे। इस पद्धति में जो विकार या विकृतियाँ आयीं वह वज्रयानियों के कारण आयी हैं। इस प्रकार की रहस्यमयी साधनाओं को न तो अधिक गुप्त रखना चाहिए न ही अधिक प्रकट करना चाहिए। यही कारण है कि शाक्त तन्त्रों में इसे प्रकट करते हुए भी बहुत कुछ गुप्त रखा गया है। अतः यदि पुस्तक पढ़कर कोई इसमें बिना गुरु से रहस्य प्राप्त किए प्रवृत्त होगा तो वह पतन की ओर अग्रसर होगा। इसीलिए सिद्धान्त है कि –

"नातिरहस्यमेकत्र ख्याप्यं न चाप्यत्यन्ततो गोप्यम्।"

उपर्युक्त साधना में भाव ही प्रधान होता है। यही कारण है कि "देवो भूत्वा देवं यजेत्", "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" जैसे वाक्य उपदिष्ट हैं। बाह्य अन्तः की ओर जाना अन्तर्मुख हो ब्रह्मरूपता की सत्यानुभूति हुए बिना मोक्ष कहाँ ? यही तो रहस्य है कि मन्दिरों की बाह्य भित्ति पर पञ्चम मकार के चित्र हैं किन्तु अन्दर कहीं नहीं। यह बाह्य जगत का चित्रण है जो अस्थायी और नश्वर है। इसका अनुभव करते हुए इसे छोड़कर मन्दिर के अन्दर जाना है। हृदगुहा दहराकाश में शान्त ब्रह्म के साथ आत्मा की एकाकारता स्थापित करना है। अपने वास्तविक शिवरूप को पाना है। मन्दिर के अन्दर की ओर बाह्य आवरणों को छोड़ते हुए जैसे–जैसे प्रवेश करते हैं आनन्द और शान्ति की मात्रा बढ़ती जाती है। यदि बाह्य भित्ति में लिप्त होकर चिपक गये तो वहीं पतन अवश्यम्भावी है क्योंकि यह बाह्यानन्द अस्थायी असत्, तम और मृत्युरूप हैं। बाहर से भीतर की ओर जाना है बाहरी चकाचौंध के रहस्य को जानकर अनादर विरक्ति के भाव को पाकर ही। यही रहस्य भित्ति चित्रों का है। तान्त्रिकों द्वारा यह चित्रण कराया गया प्रतीत होता है। उनपर विसर्गशक्ति के बारे में कहा गया है। वीर्यत्याग उसी दृष्टि से प्रयुक्त है। परन्तु उसका ईश्वरीय रहस्य शक्ति प्रवेश है। प्रतिविम्ब रूप से शक्ति में प्रवेश करना ही आगम् प्रक्रिया का रहस्यमय सङ्केत है। जैसा कि उल्लेख है– काल शक्ति के त्रिगुणात्मिका प्रकृति में भगवान सदाशिव अधोक्षज ने सृष्टि की दृष्टि से अपने पुरूष स्वरूप से वीर्य का आधान किया अर्थात प्रतिबिम्ब रूप से शक्ति में प्रवेश कर एकाकारता स्थापित करते हुए सृष्टि में प्रवृत्त हुए।

कालवृत्या तु मायायां गुणमयामधोक्षजः।

पुरूषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान्।।

तान्त्रिक साधना का मार्ग अति कठिन है; और विशेषतः वाममार्ग। निरुक्त में वाम शब्द के अनेन, अनेद्य, अनवद्य, अनभिशस्त, उक्थ्य, सुनीथ, पाक, वाग वयुन इस प्रकार दश पर्याय आए हैं; और इसका वास्तविक तात्पर्य प्राशस्त्य ही है। वाम साधना प्रशस्त मनोज्ञ साधना है। परन्तु उसका अधिकारी, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, परनिन्दा में मौनव्रती, परस्त्रीसुरत से दूर रहने वाला व्यक्ति ही हो सकता है। अत एव कहा गया है—

"वामो मार्गः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।"

यह अत्यन्त रहस्य गम्भीर मार्ग है। सामान्य योगी भी इसमें प्रवेश नहीं कर पाता। अत एव अधिकारपरक वचन निम्नरूप से मेरुतन्त्र में आया है—

परद्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु, नपुंसकः।

परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः।।

तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्यादधिकारता।

इसे गुप्त रखने का भी निर्देश भगवान शिव ने स्वयं ही तन्त्रशास्त्रों में दिया है। यही कारण है कि ग्रन्थों में अपूर्ण वर्णन ही प्राप्त होता है और वह सतही और ऊपरी—ऊपरी वर्णन है। रहस्य को गुरुगम्य ही रखा गया है। इसे प्रकट करने पर सिद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं।

प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्मात् वामाचार गतौ प्रिये।

अतो वामपथं देवि गोपयेन्मातृजारवत्।।

त्रिगुणात्मक स्वभाव के कारण त्रिविध साधक निम्न प्रकार से माने गए हैं—

(१) तमोगुणप्रधान प्रकृतिसाधक—पशुभाव की साधना

(२) रजःप्रधान प्रकृति साधक—वीर भाव की साधना

(३) सत्व प्रधान प्रकृति साधक—दिव्यभाव की साधना

आदौ भावं पशुं कृत्वा पश्चात्कुर्यादवश्यकम्।

वीरभावो महांभावः सर्वभावोत्तमोत्तमः।।

तत्पश्चाच्छ्रेयसां स्थानं दिव्य भावो महाफलः।

कहा भी है— दिव्यभावयुतानां तु तत्त्वज्ञानं सदा भवेत्। दिव्य भाव

वालों को सदा तत्त्व ज्ञान होता रहता है। यह भावोपासना का क्रम है। यह साधना भावप्रधान है। जैसा कि ऊपर वर्णन है, देवभाव या ब्रह्मभाव में प्रवेश ही मुख्य उद्देश्य है। यदि भाव में विकृति आ जाय तो पतन और यदि भाव शुद्ध सात्त्विक रहे तो सबकुछ प्राप्तव्य प्राप्त होता है। जैसा कि कहा गया है—

भावेन लभते सर्वं भावेन देवदर्शनम्।
भावेन परमं ज्ञानं तस्माद् भावावलम्बनम।।

(रुद्रयामल)

बहुजापात् तथा होमात्कायक्लेशादि विस्तरैः।
न भावेन बिना देवो यन्त्रमन्त्रफलप्रदः।।

(भावचूड़ामणि)

चाहे जितना ही जप, होम, तप किया जाय यदि भावरहित है तो देवता यन्त्र मन्त्र फलहीन हो जायेंगे। यह साधनामार्ग का एक प्रकार भावना मार्ग है। द्वितीय प्रकार अधिक कठिन है तथा बाह्यक्रिया पर भी कतिपय अंशों में निर्भर है। वह है कुल कुण्डलिनी का ऊर्ध्व सञ्चालन। इस सब की विशेष चर्चा विशेष विस्तार साध्य है। अतः यहाँ नहीं कही जा रही है। दो शब्द कुल या कौल के तात्पर्य विषयक जो शास्त्रोक्त हैं का उल्लेख करते हुए अनन्तर पञ्चमकार साधना के आध्यात्मिक रहस्य पर प्रकाश अवश्य डालेंगे। कहा गया है कि कुल ही शक्ति है। अकुल शिव है और कुल तथा अकुल के सम्बन्ध को कौल कहा गया है—

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलाऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते।।

अध्यात्मदृष्टि से कुलशब्द में 'कु' का अर्थ पृथिवीतत्त्व होता है और उस पृथ्वीतत्त्व का जहाँ लय हो वह कुल अर्थात् षटचक्रों में एक आधारचक्र और उसके सम्बन्ध से लक्षणया सुषुम्नामार्ग अर्थ हुआ। प्राण का अथवा जीव के सुषुम्ना प्रवेश को संगम कहते हैं। इस योगविद्या या तन्त्रपद्धति को कुलाङ्गना कहा गया है।

कुलाङ्गनैषाप्यथ राजवीथिः प्रविष्य सङ्केत गृहान्तरेषु।
विश्रम्य विश्रम्य वरेण पुंसा संगम्य संगम्य रसं प्रसूते।।

आगम शास्त्रों में चक्रसङ्केत, मन्त्र सङ्केत और पूजासङ्केत–इस प्रकार तीन सङ्केत माने गये हैं जिनका इस पद्य में सङ्केत है। वैसे कुल शब्द के अनेक अर्थ पातिव्रत्यादि गुणों से युक्त वंश, जनपद, गोत्र, घर, सजातीय पुरूष और शरीर भी कहे गए हैं। योगतन्त्र सिद्धान्तानुसार– अधःस्थितं रक्तं सहस्रदल कमलमपि कुलम्, तत्कर्णिकायां कुलदेवि दलेषु कुलशक्तयः सन्तीति स्वच्छन्द तन्त्रे। ब्रह्मरन्ध्र (शिरःकपाल) के नीचे लाल रंग का हजार पंखुड़ियों वाला कमल ही कुल है। उसकी कर्णिका के ऊपर कुलदेवि दलों में कुलशक्तियाँ रहती हैं। शिवशक्ति के सामरस्य को ऊपर कौलशब्द से कहा गया है। कुल से युक्त देवी कौलिनी शक्तियाँ भी अनेक फल प्रदान करने वाले जिनके तन्त्र हैं वे महातन्त्रा, जिनके लिए विविध मन्त्र हैं वे महामन्त्रा, तथा जिनकी पूजा यन्त्रों के रूप में होती है वे महायन्त्रा कहलाती हैं।

पञ्चमी पद भी शक्ति के विषय में आया है। उसका तात्पर्य पञ्चदेवों में पञ्चम शिव है। अथवा शिव का पांचवाँ स्वरूप उसकी शक्ति पञ्चमी– "पञ्चमस्य सदाशिवस्य स्त्री पञ्चमी"। अन्यत्र कहा गया है– 'मकारेषु पञ्चमस्या नन्दरूपत्वा त्तद्रूपा वा।" कल्पसूत्र का उल्लेख है कि आनन्द ब्रह्म का स्वरूप है और वह शरीर में स्थित है, उसी आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए पञ्च मकार हैं और उनके पूजा विधान भी हैं। इस दृष्टि से पञ्चमी पद पाँचों मकारों के समाहार को भी कहा गया। पञ्चमानां मानां मकाराणां समाहारः पञ्चमीति वा।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभिव्यञ्जका पञ्च मकारास्तैरथार्चनम्।।

मकारों में प्रथम के विषय में उल्लेख है कि योग साधना द्वारा परब्रह्म के साक्षात्कारात्मक ज्ञान में एक मादकता है। साक्षात्कार होने पर साधक प्रमत्त सम अवस्था को प्राप्त करता है। अतः यही मद्य है।

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन्प्रमदनज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्।।
व्योमपङ्कजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्त मितरे मद्यपायिनः।।

और भी–

ब्रह्मस्थान सरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा
या शुभ्रांशुकला सुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा।
सा हालापिवतामनर्थफलहा श्री दिव्यभावाश्रिता
यामित्वा मुनयः परार्थकुशला निर्वाणमुक्तिगताः।।

ब्रह्मरन्ध्र से जो चन्द्रामृत प्रवाहित होता है जिसके पान के लिए खेचरी मुद्रा का अभ्यास विहित है, वही मद्य है। मांस– मा शब्द का अर्थ रसना या जिह्वा, उसके द्वारा वाक्य पद या शब्दों का जो भक्षण करे अर्थात मौन धारण करे ऐसा वाक्संयमी मौनव्रती योगी मांस साधक है। अथवा सभी कर्मों को मुझ ब्रह्म के प्रति (मम) समर्पित (स) वही सर्वकर्म समर्पण मांस शब्द अर्थ हुआ।

मा शब्दाद्रसना ज्ञेया तदेशान् रसना प्रिये।
सदा यो भक्षयें देवि ! स एव मांससाधकः।।
मां सनोति हि यत्कर्म तन्मांसं परिकीर्तितम्।
न च कामप्रतीकं तु योगिभि मांसमुच्यते।।

यही भाव कुछ भिन्न रूप में अन्यत्र–

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः।
ते विज्ञानपरा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नरा
नाश्नीयात्पशुमांसमात्मविमतेर्हिंसा परं सज्जनः।।

मत्स्य–इड़ा पिंगला नाड़ियों के द्वारा प्रवहमान श्वास और प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं। प्राणायाम के द्वारा इनको नियन्त्रित कर केवल कुम्भक की स्थिति में रहनेवाला योगी मत्स्य साधक है। अथवा सभी मेरी तरह सुखदुःख के समान भागी है। सभी को सुख दुःख को समान समझना चाहिए–यह सात्विक ज्ञान मत्स्य है। मन सहित इन्द्रियां मीन हैं। इन्हें वश में कर निर्जीव बनाने वाला मीनाक्षी है।

मानसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि यो जपेत्।
स मीनाक्षी भवेद्देवि इतरे प्राणिहिंसकाः।।

संयमपूर्वक मन सहित इन्द्रियों को आत्मतत्पर करे।–

गंगायमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।
मत्समानं सर्वमूले सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्विकं ज्ञानं तन्मत्स्यः परिकीर्तितः।।

अन्यत्र दम्भ, अहंकार आदि को मीन मानकर तात्पर्य निम्न पद्य में व्यक्ति किया! गया। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य ये छः मत्स्य हैं।

अहंकारो दम्भो मदपिशुनता मत्सरद्विषः,
षडेतान्मीनान् वै विषयहरजालेन विधृतान्।
पचन् सद्विद्याऽग्नौ नियमितकृतिर्ध्वीवरकृतिः,
सदा खादेत्सर्वान् न च जलचराणां तु पिशितम्।।

मुद्रा— सहस्रदल महापद्म में मुद्रित कर्णिका के अन्दर पारद की तरह आत्मा का वास है। कोटि सूर्यों के समान उसका तेज है, साथ ही कोटि चन्द्रों के समान शीतल भी। यह अत्यधिक मनोरम, लुभावना परमतत्व कुण्डलिनी शक्ति समन्वित है। यह साक्षात्कारात्मक ज्ञान जो योगी साधना से प्राप्त करे, वही मुद्रा साधक है।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रितश्चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि ! केवलः पारदोपमः।।
सूर्यकोटिप्रतीकाश चन्द्रकोटिसुशीलतः।
अतीवकमनीयस्व पहाकुण्डलिनीयुतः।।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते।

अथवा असत्सङ्ग का मुद्रण या दबा देना ही मुद्रा है—

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्ति रसत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असत्सङ्गमुद्रणं यत्तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता।।

अथवा आशा, तृष्णा आदि आठ कष्टकारी मुद्रा मानी गयी हैं। ये मुद्रण योग्य अर्थात दबाने योग्य हैं। अतः इन्हें दबाकर नष्ट कर दे वही मुद्रा साधक हैं—

आशातृष्णाजुगुप्साभयविशदघृणामानलज्जाप्रकोपाः
ब्रह्माग्नावष्टमुद्राः परसुकृतिजनः पाच्यमानाः समन्तात्।
नित्यं सम्भक्षयेत्तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी।
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशु हति विमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा।।

मैथुन—रकार या रेफ कुंकुम वर्ण के कुंड में स्थित है। मकार बिन्दुरूप है और महायोनि में स्थित है। अकार रूप हंस पर आरूढ़ होने पर उन दोनों की एकता होती है तभी महान आनन्दकारक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। यही मैथुन है। अथवा प्रत्येक शरीरधारी के शरीर में कुल कुण्डलिनी शक्ति है। उसका शिव (सहस्रारस्थ) के साथ समागम ही मैथुन है।

रेफस्तु कुङ्कुमाभासः कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दुरूपः महायोनौ स्थितः प्रिये।।
अकारहंसमारूढ्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।।
कुलकुण्डलिनी शक्तिः देहिनी देहधारिणी।
तया शिवेन संयोगो मैथुनं परिकीर्तितम्।।

अथवा सुषुम्ना जो सूक्ष्म नाड़ी है वही सुन्दर नारी है और चन्द्र—सूर्य योग में उसका सहस्रार परम पद से योग होकर शिवशक्त्यैक्यानुभूति ही मैथुन है। अतः निरन्तर सुषुम्ना में रमण करना चाहिए—

या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्ना,
सा कान्ता लिङ्गनार्हा न मनुज रमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्थयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ,
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्।।

वस्तुतः यह कुण्डलिनी शक्ति ही योगिजन प्रापणीय है अैर यही तन्त्र शक्ति के रूप में कही गयी है—

तन्त्रकृत्तन्त्रसम्पूज्या तन्त्रेशी तन्त्रसम्मता।
तन्त्रेशा तन्त्रवित्तन्त्रसाध्या तन्त्रस्वरूपिणी।

इसी कारण तन्त्र शक्ति प्रति का मार्ग माना गया है। तन्त्र अर्थात् मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त कुल कुण्डलिनी विस्तार अथवा तत्तत् तन्त्र शास्त्रों में विधानुसार पूजनीय महाशक्ति भी तन्त्रेशी कही जा सकती है।

वैसे विचार किया जाय तो भगवान शिव ने सात्विक, राजस, तामस—तीन प्रकार के तन्त्रों का अधिकारी भेद से आविर्भाव किया। इनमें भी प्रत्येक के पाँच—पाँच भेद हैं। यहाँ वाम का सन्दर्भ है, अतः वाम के पाँच भेद—कौलिक, वाम, चीन, सिद्धान्ती और शाबर हैं।

कौलिकोङ्कुष्ठतां प्राप्तः वामः स्यात्तर्जनीसमः।
चीनक्रमो मध्यमः स्यात्सिद्धान्तीयोऽवरो भवेत्।।
कनिष्ठः शाबरो मार्गः इति वामस्तु पञ्चधा।।

कुल यहाँ गोत्र अर्थ में है उसके भी दक्ष वाम दो भेद हैं।

कुलगोत्रमिति ख्यातं तच्च शक्तिशिवोद्भवम्।
यो न मोक्षमिति ज्ञानं कौलिकः परिकीर्तितः।।
दक्ष वामक्रियायुक्तः कौलश्चोभयरूपतः।

चीन के भी दो भेद कहे गए हैं—

निष्कलः सकलश्चेति चीनाचारो द्विधामतः।
निष्कलो ब्रह्मणानाञ्च सकलो बुद्धगोचरः।।

ब्राह्मणों का निष्कल चीनाचार तथा सकल चीनाचार बुद्धमतानुयायियों का है। ऊपर कहा गया है कि शिवशक्ति में अभेद माननेवाला कौल है। वैसे कौलिक के उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेद से भी तीन भेद किए गए हैं। कौलिक आचार में प्रवञ्चना, असत्य, अगम्यागमन आदि निषिद्ध हैं।

अगम्यागमनञ्चैव धूर्तमुन्मत्तवञ्चकम्।
अनृतं पापगोष्ठीं च वर्जयेत्कौलिकोत्तमः।।

वस्तुतः तान्त्रिक साधना में स्त्री को शक्ति का प्रतीक माना गया है। बिना स्त्री के यह साधना सिद्धिदायक नहीं मानी गयी, यहाँ तक कहा गया है कि शक्ति सम्पन्न होने के कारण ही शिव शिव हैं। अन्यथा शव ही हैं। इस पद में इकार शक्तिवाचक है। तभी शिव शब्द दोनों की एकरूपता का वाचक है। एक अंग्रेज लेखक ने तान्त्रिकों की धारणा हू–बहू (तत्समकक्ष) व्यक्त किया है —

The female is the primary and original sex; originally and normally all life centres about the female. The male, not necessary to the seheme of life; was developed under the operation of the principle of advantage to secure organic progress through the crossing of strains.

तान्त्रिक समुदाय में भी शक्ति या स्त्री को ही मूल माना गया है। सृष्टि का मूल शक्ति ही तो है। दुर्गासप्तशती में कहा गया है— "स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।" अर्थात जगत में जो कुछ है वह स्त्रीरूप ही है, अन्यथा निर्जीव है। भगवती शक्ति को योनिरूपा कहा गया है। इसी योनिरूप को अन्य तन्त्र ग्रन्थों में त्रिकोण या कामकला भी कहा गया है।

साथ ही योनिरूपा भगवती का सहस्रार से मूलाधार तक (अवरोह क्रम) तथा मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त योनिबीज ऐं का जप करते हुए ध्यान करना ही योनिमुद्रा मानी गयी है। योनिमुद्रा के बिना कोई भी साधन पूजन सफल नहीं हो सकता। यन्त्र में प्रतीक रूप से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त अधोमुख त्रिकोण और ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार पर्यन्त ऊर्ध्वमुख त्रिकोण – इस प्रकार यह षट्कोण बन जाता है। यह समग्र पिण्ड का लोम विलोम प्रतीक भी है। तात्पर्य यह हुआ कि पिण्ड भी त्रिकोणात्मक और ब्रह्माण्ड के मूल में भी त्रिकोण ही है। जब यह उपर्युक्त षट्कोण बनता है तो मिथुन का प्रतीक भी। यह कैसे होता है, इसका मनोवैज्ञानिक रहस्य है। भारतीय मनीषा की यह सर्वोत्कृष्ट सर्वोच्च उपलब्धि है। यहाँ तक कहा गया है कि स्त्रियाँ सर्वप्रकार से पवित्र होती हैं–
"स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः।" यह सृष्टि का प्रतीक है और त्रिकोण या योनि इसका स्वरूप। योनि में बिन्दुपात होते ही उसमें हलचल होकर उस अधोमुख त्रिकोण के ऊपर पुनः एक त्रिकोण और उसपर पुनः। यह ब्रह्माण्ड का प्रतीक अथवा सृष्टि की व्याख्या तब करने लगता है जब त्रिकोण समुदय के चारो तरफ पूर्ण गोलाकार रेखा खींची जाकर मण्डल न बन जाय। उसमें सभी कुछ है–गति भी, क्रिया भी, ज्ञान भी। कोई भी यन्त्र जो तान्त्रिक साधना में प्रयुक्त है; इस एक मूल त्रिकोण, जो प्रायः अधोमुख होता है, उसके बीच में बिन्दु के बिना नहीं बनता। इसी से प्रारम्भ होकर षट्कोण, वसुकोण, द्वादशकोण–फिर मण्डल सब बनकर एक ब्रह्माण्ड का आकार जो शिव और शक्ति की एकाकार लीला का प्रतीक है, बनता है। योनि का अर्थ सृष्टि का कारण है। इस तथ्य को कोई मना नहीं कर सकता कि यह ऐसा नही है। दर्शनों में भी योनि पद का कारण अर्थ में प्रयोग किया गया है। अत एव योनितन्त्र जगत्कारण योनिरूपा सर्वव्यापिनी भगवती शक्ति की ही प्रतीकोपासना तथा यदि भाव की शुद्धि हो तो प्रत्यक्ष स्वशक्ति को साथ में रख साधक देवभाव या ब्राह्मी भाव में ओत–प्रोत होते हुए भगवती शक्ति के साथ एकाकारता स्थापित करते हुए साधना करे। यहाँ वासना लेश भी वर्जित है। कहा गया है कि –

त्रिकोण कुण्डली मात्रा नित्यं। श्रीः प्रकृतिः परा।

त्रिकोण में तीन रेखा होती है। वही योनि है। इसकी वाम रेखा रक्ताभ ब्रह्मा है। दक्षिण रेखा परश्शतचन्द्रप्रभाभावन विष्णु। आड़ी रेखा रुद्र है। ईश्वर और सदाशिव अर्द्धमात्रा में हैं। त्रिकोणान्तर्गत बिन्दु परम कुण्डली है। लाल

सूर्य के समान बिन्दु का एक बाह्य आवरण उसके अन्दर कोटि चन्द्र सम शून्य और यह शून्य ही परब्रह्म शिव और परम कारण भी है। यह त्रिरेखा त्रिलोक, त्रिमूर्ति, त्रिगुण, त्रिवेद और त्रिवर्ण का प्रतीक भी है। इसे— बीजत्रितय—शक्तित्रितय—लिङ्गत्रितयमयम् त्रिकोणं कामकलाक्षररूपम्। वैखरी विश्वविग्रहा। कामकला का नित्य (अक्षर) रूप त्रिकोण है। यह तीन बीज, तीन शक्ति, तीन लिङ्गमय है। और वैखरी वाणी का प्रकट रूप ही जगत है। इन तीन रेखाओं के नाम वामा, ज्येष्ठा और रौद्री हैं। इसी त्रिकोण, जो विश्व का मूल आधार है और बिन्दु के प्रवेश होने पर सृष्टि प्रक्रिया अर्थात विस्तार विलास प्रारम्भ होता है, के बारे में तन्त्रालोक का उल्लेख है—

त्रिकोणं भगमित्युक्तं वियत्स्थं गुप्तमण्डलम्।
इच्छाज्ञानक्रियाकोणं तन्मध्ये चिञ्चिनीक्रमम्।।

शून्य में गुप्त त्रिकोण मण्डल है, उसकी संज्ञा भग है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया उसके तीन कोण हैं। बीच में चिञ्चिनी शक्ति का क्रम अर्थात स्पन्द है। त्रिकोण के तीन कोण सृष्टि, स्थिति, संहार के भी प्रतीक हैं। इस प्रकार योनिरूपा भगवती की साधना का विधान अनेक प्रकार से अनेक शाक्त ग्रन्थों में वर्णित हैं। किन्तु ग्रन्थ में देखकर साधना में प्रवृत्त होना विपरीत प्रभाव कर सकता है। यह सिद्धगुरु और शुद्ध भाव के बिना सम्भव नही, क्योंकि ग्रन्थों में प्रकट करने योग्य ही प्रकट किया गया है। शेष गोपनीय गुरुगम्य ही रखा गया है और सर्वत्र आपाततः प्रतीयमान तात्पर्य भी तन्त्र वाक्यों का नहीं होता। अत एव तन्त्रविद्या अतिगूढ़ है और रहस्यज्ञ सिद्धगुरु भी दुर्लभ है। यह तन्त्र विद्या और तन्त्र आगम शास्त्र अनन्त है। शास्त्रों में समन्वय के द्वारा ही तत्त्व और सिद्धान्त का सम्यक् स्वरूप पाया जा सकता है। आगम और तन्त्र का रहस्य शास्त्र की अनन्तता के कारण जानना अत्यन्त कठिन है। अतः "गच्छतः स्खलनं क्वापि" के सिद्धान्त के अनुसार जो त्रुटियाँ हों विद्वज्जन क्षमा करें।

● *आचार्य चन्द्रकान्त दवे*

विषय सूची

योनितन्त्रम

प्रथमः पटलः

ॐ परमदेवतायै नमः।। ॐ श्रीगुरवे नमः।।

[1]कैलाशशिखरारूढ़ं देवदेवं जगदगुरूम्।
सदास्मेरमुखी दुर्गा[2] पप्रच्छ नगनन्दिनी[3] ।। १।।

श्री देव्युवाच–

चतुःषष्टि च[4] तन्त्राणि कृतानि भवता प्रभो।
तेषां मध्ये प्रधानानि वद मे करूणानिधे ।। २।।

श्री महादेव उवाच–

शृणु पार्वति चार्वङ्गि अस्ति गुह्यतमं प्रिये।
कोटिवारं वारितासि तथापि श्रोतुमिच्छसि ।। ३।।
स्त्री स्वभावाच्च चार्वङ्गि तथा मां परिपृच्छसि।
गोपनीयं प्रयत्नेन त्वयेव विद्यते च तत्[5] ।। ४।।
मन्त्रपीठं यन्त्रपीठं[6] योनिपीठञ्च पार्वती।
योनिपीठं प्रधानं हि तव स्नेहात् प्रकाश्यते ।। ५।।

ॐ परमदेवता को नमस्कार। ॐ श्री गुरु को नमस्कार।।

सदा प्रस्फुरितमुख अर्थात मृदु–मृदु मुस्कानधारी दुर्गा ने कैलाशशिखर पर आरूढ़ जगदगुरु परमेश्वर से पूछा–हे प्रभो ! हे करुणानिधे ! आपने चुतःपष्टि तन्त्र का प्रणयन किया है। उसमें से आप प्रधान तन्त्रसमूह मुझे बताएँ। १ – २

महादेव जी ने कहा – हे चार्वङ्गि, पार्वती। सुनो ! इस गुह्यतम विद्या का वर्णन मैंने कोटिबार किया है, फिर भी तुम केवल नारीस्वभावगत चापल्य के कारण इसे सुनना चाहती हो और इसी कारण मुझसे इसके बारे में जिज्ञासा कर रही हो। हे पार्वती ! हे चार्वङ्गि ! मन्त्रपीठ, यन्त्रपीठ एवं योनिपीठ (शक्तिपीठ) के विषय में सर्वदा सर्वप्रकार से उद्‌घाटित करूंगा। इन तीनों पीठों में योनिपीठ सर्वप्रधान है। मैं मात्र तुम्हारे प्रति स्नेहवश ही इस पर प्रकाश डालूंगा। ३ – ५

१। ॐ। २। देवी। ३। परमेश्वरम्। ४। चतुषष्ठिस्त्र। ५। शस्वन्मां। प्रियेण विद्यते ततः। त्वयेव विद्यते ततः। अद्यैव विद्यते च तत्। ६। यन्त्रपीठं लिङ्गपीठं।

हरिहराद्याश्च ये देवाः[१] सृष्टि- स्थित्यन्तकारकाः[२] ।
सर्वे वै योनिसम्भूताः शृणुष्व नगनन्दिनि ।। ६।।
शक्तिमन्त्रमुपास्यैव यदि योनिं न पूजयेत् ।
तेषां दीक्षाश्च मन्त्राश्च ठ नरकायोपपद्यते ।। ७।।
अहं मृत्युञ्जयो देवि तव योनि प्रसादतः ।
तव योनिं महेशानि भावयामि अहर्निशम् ।। ८।।
पूजयामि सदा दुर्गे हृत्पद्मे सुरसुन्दरि[३] ।
दिव्यभावो वीरभावो यस्य चित्रे विराजते ।। ६।।
अनायासेन देवेशि तस्य मुक्तिः करे स्थिता।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य यो वा योनिप्रपूजकः ।। १०।।
स धन्यः स कवि र्धीमान् स वन्द्योऽपि सुरासुरैः।
ब्रह्मा यदि चतुर्वक्तैः कल्पकोटि-शतैरपि ।। ११।।
तदा वक्तुं न शक्लोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ।
यदि भाग्यवशेनापि[४] सपुष्पां मीनचेतसाम्[५] ।। १२।।
तदेव महतीं पूजां कृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।
आनीय प्रमदां कान्तां घृणा-लज्जा-विवर्ज्जिताम् ।। १३।।
स्वकान्तां परकान्तां वा सुवेशां स्थाप्य मण्डले।
प्रथमे विजयां दत्त्वा[६] पूजयेद् भक्तिभावतः ।। १४।।

हे नगनन्दिनि ! श्रवण करो। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र प्रभृति समस्त देवगण इस योनि अर्थात आद्याशक्ति से समुत्पन्न हैं। शक्ति मन्त्र उपासक यदि योनिपीठ की पूजा न करे, जिसमें उसकी दीक्षा हुई है, तो मन्त्र एवं पूजा प्रभृति सबकुछ नरक–गमन का कारण हो जाता है। ६–७

हे देवि ! तुम्हारी योनि अर्थात शक्ति प्रभाव के ही कारण मैं अहर्निश चिन्ता एवं सर्वदा अपने हृत्पद्म में तुम्हारी पूजा करता हूँ। उस हृदय में तुम दिव्यभाव एवं वीरभाव से विराजमान हो। हे दुर्गे ! मुक्ति तो अनायास ही तुम्हारे करतलगत है। जो व्यक्ति शक्तिमन्त्र का आश्रय लेकर योनिपीठ अर्थात शक्तिपीठ की उपासना करता है; वह व्यक्ति धन्य है। वह व्यक्ति कवि, धीमान एवं सुरासुरगणों द्वारा वन्दनीय है। ८–१०

ब्रह्मा यदि चतुर्मुख द्वारा शतकोटि कालतक इस योनिपीठ अर्थात शक्तिपीठ के महात्म्य का कीर्तन करें, तो भी, वे इसके गुणगान को पूरा नहीं कर सकेंगे। इस विषय में मैं और अधिक क्या कह सकूँगा ? यदि भाग्यवश पुष्पिता कुलसुन्दरी प्राप्त हो जाय, तो उसकी योनिपीठ की महती पूजा द्वारा मोक्ष लाभ होता है। स्वकान्ता हो या परकान्ता उसे सर्वप्रथम सुन्दरवेश मण्डल के मध्य में स्थापित करना चाहिए। उसके पश्चात् उसे विजया (सिद्ध, भाङ्ग) प्रदान करके भक्तिभाव से पूजा करना चाहिए ! ११–१४

१। हरिहराद्यश्च ये हरिहराश्च ये देवाः २। कारिणः। ३। चैव सुन्दरि। सुरेश्वरि । ४। वशादपि वशेनैव। ५। सपुष्पां लम्यते च तां। ६। कृत्वा।

वामोरौ परिसंस्थाप्य पूजा देया कुलोचिता[१] ।
योनिगर्त्ते चन्दनञ्च दद्यात् पुष्पं मनोहरम।। १५।।
तत्र चावाहनं नास्ति जीवन्यासं तथा मनुः ।
तन्मुखे कारणं दत्त्वा सिन्दूरेनार्धचन्द्रकम् ।। १६।।
ललाटे चन्दनं दत्त्वा हस्तद्वयं कुचोपरि ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा स्तनमध्ये[२] वरानने ।। १७।।
कुचयोर्मर्दनं कुर्यात् गण्डचुम्बनपूर्व्वकं[३] ।
अष्ठोत्तरशतं वापि[४] सहस्र योनिमण्डले ।। १८।।
जप्त्वा महामनुं स्तोत्रं पठेद्भक्ति परायणः ।
पूजाकाले गुरुर्न स्यात् यदि[५] साधक सत्तमः[६]।। १९।।
स्वयं पूजा प्रकर्त्तव्या[७] नात्र कार्या विचारणा ।
गुरोरग्रे पृथक् पूजा विफला च न संशयः ।। २०।।
तस्मात् बहुतरै र्यत्नै र्गुरवे च समर्पयेत् ।
पूजा वसाने आगत्य प्रणमेत् योनिमण्डले[८] ।। २१।।

उसके बाद साधक उस युवती को अपने बाएँ जाँघ पर स्थापित करके कुलाचार–प्रथानुसार उसकी पूजा करे। अर्थात उसके पश्चात् साधक उस युवती को अपने बाँए जाँघ के उपरिभाग में स्थापित करके उस युवती की योनि (शक्तिपीठ) की पूजा करेगा। शक्तिपीठ को चन्दन एवं मनोहर पुष्प प्रदान करे। इस स्थल पर इष्टदेवी के आवाहन, जीवन्यास अथवा मन्त्रन्यास की कोई आवश्यकता नहीं है। साधक इस कुलयुवती को कारण (मद्य) प्रदान करके सिन्दूर द्वारा उसके ललाट पर अर्द्धचन्द्र अंकित करेगा। १५–१६

कुलयुवती के ललाट पर चन्दन प्रदान करके साधक अपने दोनों हाथ इस युवती के स्तनों पर स्थापित करेगा। उसके बाद दोनों कुचों के मध्य अर्थात हृदय पर एक–सौ–आठ बार मूलमन्त्र का जप करेगा। १७

तत्पश्चात साधक को दोनों कुचों का मर्दन एवं गण्डचुम्बन करते हुए योनिमण्डल पर एक–सौ–आठ अथवा एक–हजार–आठ बार महामूलमन्त्र का जाप करना चाहिए। १८

जप समाप्त करने के बाद भक्तिभाव पूर्वक स्तोत्र पाठ करना चाहिए। पूजाकाल के समय यदि उस स्थान पर गुरु न उपस्थित हो तो उस स्थान पर साधक स्वय कुलपूजा संपन्न करेगा। परन्तु गुरू के उपस्थित रहने पर गुरू ही कुलपूजा संपन्न करेगा। गुरू के सम्मुख पृथक पूजा संपन्न करने पर साधक की पूजा सम्पूर्णरूप से फलहीन हो जायेगी, इसमें कोई संशय नहीं। १९–२०

गुरू के उपस्थित रहने पर सम्पूर्ण कार्यभार गुरू के उपर ही अर्पित करना चाहिए एवं गुरू द्वारा संपन्न पूजा के समापन पर साधक पूजास्थान पर जाकर योनिपीठ को प्रणाम करेगा। २१

१। पूजयेत् योनिकुन्तलां; पूज्यायोनिः सकुन्तलां; यजेत् योनिं सकुन्तलां; वामोरौ विन्यस्य पूजादेशाकुलोद्भवा; वामोरौ ताञ्च संस्थाप्य यजेद् योनिं सकुन्तलां इति पाठभेदाः। २। तन्मध्ये। ३ गण्डे चुम्बनपूर्वकम्। ४। शतं जप्त्वा। ५। तत्र; नचेत्। ६। पूजातत्र प्रकर्त्तव्या यदितत् साधकोत्तमः; उत्तमः। ७। पूजकोहं स्वयं तत्र। पूजकोऽपि स्वयं तत्र। ८। योनिमण्डलं।

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्वगुरुं प्रणमेत् पुनः[1]।
प्रार्थयेद् बहुमत्रेन कृताञ्जलि पुटः सुधीः ।। २२।।
योनिपूजाविधिं दृष्ट्वा कृतार्थोऽस्मि[2] न संशयः।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्[3] ।। २३।।
पूजां कृत्वा महायोनिमुद्धृतं[4] नरकार्णवात् ।। २४।।
इति योनितन्त्रे प्रथमः पटलः।।

इसके बाद योनिपीठ को तीनबार पुष्पाञ्जि प्रदान करके साधक अपने गुरू को प्रणाम करेगा। तत्पश्चात् साधक कृताञ्जलि पुट के साथ विनयपूर्वक गुरू को निम्नोक्त वाक्योच्चारण द्वारा कृतज्ञाता ज्ञापन करेगा। यथा–आय ने मुझे योनिपूजा–विधि प्रदर्शित करके सर्वप्रकार कृतार्थ किया है। आज मेरा जन्म सफल एवं जीवन धन्य हुआ। आज आपने योनिपूजा करके मुझे नरकगामी होने से बचा लिया । २२–२४

योनि तन्त्र के प्रथम अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।

१। ततः २। विधिं कृत्वा कृतार्थोऽस्मिन। ३। सुजीवनं। ४। महायोनेरुद्धृतं। महायोनिमुद्धृत्त्य।

द्वितीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच–

देव देव जगन्नाथ सुष्टि स्थित्यन्तकारकः ।
त्वां विना जनकः कोऽपिमां विना जननी परा ।। १।।
संक्षेपात् कथिता योनि-पूजाविधि-रनुत्तमा ।
कस्या योनिः[1] पूजितव्या योनिश्च की दृशी शुभा।। २।।

श्रीमहादेव उवाच–

नटी कापालिनी[2] वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ।। ३।।
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्त्रिताः ।
अथवा सर्वजातीया विदग्धा[3] लोललोचना ।। ४।।

देवि ने कहा– हे देवदेव, जगन्नाथ ! आप सुष्टि स्थिति एवं प्रलयकर्ता हैं। आपके अतिरिक्त सृष्टि का जनक और कोई जननी नहीं है, तथा मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है। संक्षेप में आप योनिपूजा की प्रत्युत्तम विधि जानते है; तथापि किसकी योनिपीठ पूजा करना विधेय है तथा किस प्रकार की योनि शुभदायिका है, इसका वर्णन करिए। १–२

महादेव ने कहा– नटी, कापालिका, वेश्या, रजकी, नापितङ्गना, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपयुवती, मालाकार कन्या, इन्हीं नव जातीया युवंतियों की शुभयोनि एवं योनिपीठ पूजा के योग्य प्रशस्त होती है। अथवा सर्व्वजातीया विदग्धा एवं लोललोचना (पुनः पुनः परिभ्रामित तथा इधर–उधर घूमने वाली चंचल नयना) कुलयुवती इस उद्देश्य के लिए प्रशस्त होती है। ३–४

१। कन्या योनौ। २। कापालिका। कापालिकी। ३। विदग्धा। विदग्धा इति समीचीनः। विदग्धा– रसिका सुचतुरा परकीया नायिका; वाक्चतुरा (वाक्चातुरीविशिष्टा) रमणी। परपुरूषासक्ता विवाहिता स्त्रीलोक; उपपतिरता रमणी; कुलटा वा भ्रष्टा नारी।

मातृयोनिं परित्यज्य सर्व्वयोनिञ्च[1] ताड़येत् ।
द्वादशाब्दाधिका-योनिं यावत् षष्टीं समापयेत् ।। ५।।
प्रत्यहं पूजयेद योनिं[2] पञ्चतत्त्वै र्विशेषतः[3]।
योनिदर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलम् लभेत्[4] ।। ६।।
तिलकं योनितत्त्वेन नस्त्रञ्च कुलरूपकम् ।
आसनं कुलरूपञ्च पूजनञ्च कुलोचितम्[5]।। ७।।
प्रथमं मर्दनं तस्याः कुन्तला[6] कर्षणादिकम् ।
तद्धस्ते च[7] स्वालिङ्गञ्च दद्यात् साधक[8]-सत्तमः ।।८।।
योनिपूजां विधायाथ लिङ्ग[9]-पूजनभुत्तमम् ।
चन्दनं कुङ्कुमं दद्यात् लिङ्गोपरि वरानने ।। ६।
योनौलिङ्ग समाक्षिप्य ताड़यद्बहुयत्नतः ।
ताड्यमाने पुनस्तस्या जायते तत्त्वमुत्तमम् ।। १०।।
तत्त्वेन पूज्येद्देवीं योनिरूपांजगन्मयीम् ।
भौमावास्यां निशाभागे चतुष्पथ[10] गतो नरः ।। ११।।
श्मशाने प्रान्तरे गत्वा दग्धमीन - समन्वितः ।
पायसानं बलिं दत्त्वा कुबेर इव पारग[11]ः ।। १२।।

केवलमात्र मातृयोनि का परित्याग करके अन्य समस्त कुलयुवतियों की योनि ताड़ना–योग्य है। साधक बारहवर्ष से अधिक युवतियों की– योनिपीठ को साठ वर्ष पर्यन्त पञ्चतत्व द्वारा यथाविधान पूजा करे। योनिपम्ठ के दर्शनमात्र से कोटितीर्थ दर्शन का फल लाभ होता है। ५–७

योनितत्त्व के द्वारा तिलक प्रदान करना चाहिए। कुलाचार प्रथानुयायी वस्त्र एवं आसन ग्रहण करके कुलोचित विधानपूर्वक इष्टदेवी की पूजा करे। पहले कुलयुवती का कुचमर्दन करके उसके कुन्तलादि को आकर्षित करे। तत्पश्चत् साधक श्रेष्ठ उसके हाथ में रच–लिंङ्ग अर्पण करे। पहले योनिपीठ की पूजा करने के पश्चात लिंङ्ग, पीठ की पूजा सर्वोत्तम पूजा मानी गई है। हे वरानने ! लिंङ्ग के ऊपर चन्दन एवं कुङ्कुम प्रदान करना चाहिए। ८–६

योनि में लिंङ्ग का निक्षेप करके सर्वप्रयत्नपूर्वक ताड़ना करना चाहिए। उस अवस्था में कुलयुवती उत्तम तत्त्व ग्रहण करके उसके द्वारा योनिरूपा (अर्थात) आद्याशक्तिस्वरूपा जगन्माता की पूजा करे। मंगलवार अमावस्या तिथिको चौराहे, श्मशान अथवा प्रान्तर में गमन करके पूजा के अन्त में दग्धमीन (मत्स्य) एवं पायसान्न की बलि प्रदान करने से साधक कुबेर के समान हो जाता है। १०–१२

१। सर्वयोनिषु २। योनौ। ३। विधानतः। ४। भवेत्। ५। पूजाश्चापि; कुलरूञ्च पूजनम्। प्रथमं मंगलं तस्याश्चुम्बनं कर्षणादिकम् इति वा पाठः। ७। तस्या हस्ते। ८। पूजकः ६। लिङ्गं १०। चतुष्पथे। चतुष्पथ–चार रास्तों का संयोगस्थल; चतुर्वर्ग प्रदायिनी अद्याशक्ति देवी का मन्दिर। ११। कुबेर–हरसाधकः; कुबेर–हरचापरः।

चितायां भौमवारे च यो जपेद् योनिमण्डले[1] ।
पठित्वा कवचं देवि पठेन्नामसहस्रकम् ।। १३।।
स भवेत कालिका पुत्रो मुक्तः कोटिकुलैः सह।
सामिषान्नं बलिं दत्त्वा शून्यगेहे अथवा गृहे ।। १४।।
जपित्वा च पाठित्वा च भवेद् योगीश्वरो नरः ।
रजरचलाभगं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा[2] साधकः स्पयम् ।। १५।।
अष्ठोत्तरशतं जदवा भवेत् भुवि पुरन्दरः ।
स्वशुक्रै योनिपुष्पैश्च बलिं दत्त्वा जपेन्मनुमा ।। १६।।
दग्धमीनं कुक्कुटान्डं मूषकं महिषं नरं[3] ।
मधु मांसं पिष्टकान्नं बलिं दत्त्वा निशामुखे ।। १७।।
यत्र तत्र महास्थाने स्वयं नृत्य परायणः ।
दिगम्बरो मुक्तकेशः स भवेत् सम्पदाम्पदम् ।। १८।।

मंगलवार के दिन चिता पर अवस्थित होकर जो साधक पूजा के अन्त में प्रथमतः शक्तिपीठ का जप, कवच–पाठ और तदनन्तर कालिका का सहस्रनाम पाठ करे, वह स्वयं कालिका के पुत्र–तुल्य हो जाता है और अपने कोटि कुल के साथ मुक्तिलाभ करता है।

विजन–गृह–अथवा स्वगृह में आमिष संयुक्त बलि प्रदान करने और मन्त्रजप एवं कवच सहस्रनाम पाठ करने से साधक शिवतल्य हो जाता है।

रजस्वला कुलर्युवती (शक्ति) की योनिपीठ का दर्शन और स्पर्श करने के बाद जो साधक अष्टोत्तर–शतबार इष्ट मन्त्र का जप करे, वह धरातल पर इन्द्र के समान हो जाता है।

जो व्यक्ति अपने शुक्र एवं स्वयम्भु कुसुम द्वारा बलि प्रदान करके रात्रि काल मन्त्र जप करे अथवा जो व्यक्ति निशामुख दग्ध मत्स्य, कुक्कुटांड, मेष, महिष, नर, मधु, मांस और पिष्टकान्न द्वारा किसी महाश्मशान पर बलि प्रदान कर स्वयं दिगम्बर, मुक्तकेश एवं नृत्यनरायण हो जाय, वह व्यक्ति समस्त सम्पदा का अधीश्वर जो जाता है। १३–१८

---

१ योनिमण्डलं; २। रजस्वलाभगं पुष्पं दृष्ट्वा च। ३। कलिते नरबलि निषिद्ध

परयोनौ जपेन्मन्त्रं सर्वकाले च सर्वदा ।
देवी बुद्धया यजेद् योनिं[1] तां शक्तिं शक्तिरूपिणीम् । १६ ।।
धर्म्मार्थकाममोक्षाथी चतुर्व्वर्गं[2] लभेन्तरः ।
मद्यं मांसं बलिं दद्यात् निशायां साधकोत्तमः[3] ।। २० ।।
तत्नतस्ताड़येद् योनिं कुचमर्द्दन-पूर्व्वकम् ।
शक्तिरूपा च सा देवी विपरीतरता यदि ।। २१ ।।
तदा कोटि कुलैः साद्‌र्धं जीवितश्च सुजीवितम् ।
योनिक्षालन-तोयेन लिङ्ग-प्रक्षालनेन च ।। २२ ।।
पूर्जायत्वा महोदेवीं[4] अर्घं दद्यात् विधानतः ।
तत्तीयं त्रिविधं कृत्वा भागं शक्तयै निवेदयेत् ।। २३ ।।
भागद्वयं तथा मन्त्री कारणेन व्यवस्थितम् ।
मिश्रयित्वा महादेवि पिवेत् साधकसत्तमः ।। २४ ।।
वस्त्रालङ्कार-गन्धाद्यै-स्तोषयेत् परसुन्दरीम्[5] ।
तद योनौ पूजयेद् विद्यां निशाशेषे विधनतः ।। २५ ।।
भगलिङ्गै भगक्षालै भगशब्दभिधानकै[6]: ।
भगलिङ्गामृतैः कुर्य्यान्नैवेद्यं साधकोत्तमः ।। २६ ।।
इति योनितन्त्रे द्वितीयः पटलः ।।

सदैव तथा सभी स्थान पर परकीया कुलयुवती की योनि पर (शक्तिपीठ अर्थात् दंव्यङ्ग) जप करना चाहिए। योनिपीठ को आद्याशक्तिरूपिणी (कुलयुवती को आद्याशक्तिरूपिणी) अर्थात् इष्टदेवी मानकर पूजा करना चाहिए। इस रूप में आराधना करने से धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष–चतुर्व्वर्ग फल लाभ होता है। साधक को रात को मद्य मीस द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए। बलि प्रदान करने के बाद सयत्न कुचमर्द्दन करते हुए योनि की ताड़ना करना चाहिए। शक्तिरूपा वह देवी यदि विपरीत रति में प्रवृत्त हो जाय तो साधक अपने कोटिकुल के साथ धन्य हो जाता है। योनि एवं लिंग प्रक्षालन द्वारा प्राप्त जल से महाशक्ति की पूजा तथा यथाविधान अर्घ्य प्रादन करना चाहिए। इस जल का तीन भाग करके एक भाग शक्तिरूपिणी कुलयुवती को निवेदन करना चाहिए। अन्य दो भाग कारणों के साथ मिश्रित करके साधक श्रेष्ठ को स्वयं पान करना चाहिए। १६–२४

इसके पश्चात वस्त्रालङ्कार एवं गन्धादि प्रदान करके उस शक्तिरूपा कुलयुवती को संतुष्ट करना चाहिए। रात्रि व्यतीत हो जाने पर कुलयुवती की योनिपीठ पर विधानानुसार परमाप्रकृति आद्याशक्ति की पूजा करनी चाहिए। पूजाकाल के समय भग लिंग द्वारा भगप्रक्षलित जल एवं भगलिङ्गामृत द्वारा साधक श्रेष्ठ को नैवेद्य प्रदान करना चाहिए। २५–२६

योनि तन्त्र के द्वितीय पटल का अनुवाद समाप्त।

१। यजेद्देवीं। २। मोक्षाणां चतुर्व्वर्गफलं लभेत्। ३। साधकैः सह । ४। महायोनिं। तत्त्वं। ५। परदेवतां; परयौवनां ६। शब्दाभिधायकैः; शब्दाभिचारकैः।

तृतीयः पटलः

श्रीमहादेव उवाच–

अथ वक्ष्ये महेशानि सावधानाव धारय ।
गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ।। १।।
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात प्रकाशात् मरणं ध्रुवम्[1]।
प्रकाशात् मन्त्रहानि[2] स्यात् प्रकाशात् शिवहा भवेत्।। २।।
योनितत्त्वं समुद्भूतं तन्त्रं[3] तन्त्रप्रधानकं ।
सुगोप्योऽयं हि तन्त्रश्चेत्[4] तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।। ३।।
पापात्मा[5] मैथुने यस्य घृणा स्याद् रक्तरेतसोः[6] ।
पाने भ्रान्तिर्भवेद् यस्य भेदबुद्धिश्च साधके[7] ।। ४।।
शक्तिमन्त्रमुपास्यैव[8] स दुरात्मा कथं व्रजेत्[9] ।
पूजयित्वा महामायां[10] छागमेषादिभिर्नरैः[11] ।। ५।।
रूरूभि र्हरिणै[12] रूष्ट्रै र्गजै र्गोभिः शिवासुभि[13]: ।
सिंहैरश्वै-गर्दभैश्च[14] पूजयेद् भक्तिभावतः ।। ६।।

महादेव जी ने कहा– हे शिवानि ! इसके बाद मैं सर्व्वप्रयत्न से गोपनीय विषय बोल रहा हूँ। इसे तुम सावधानीपूर्वक सुनो। इस समस्त विषय को कदाचित मैं प्रकाशित न करता। १

इसे प्रकाशित करने से सिद्धिहानि एवं मन्त्रहानि होती है। प्रकाशित करने से मृत्यु निश्चत (पाठभेद अनुयायी–वध वा बन्धन) अर्थात मृत्यु सुनिश्चत एवं समस्त कल्याण का विनाश हो जाता है। २

योनितत्त्व से उत्पन्न तन्त्र ही तन्त्रों में प्रधान है। यह तन्त्र सर्वप्रकार गोपनीय होने से भी केवल तुम्हारे प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण ही मैंने इसे प्रकाशित किया ३

मैथुन के प्रति जिसकी घृणा, रक्त और रेत पान मैं जिसकी भ्रांति एवं साधनों में जिसकी भेद बुद्धि अर्थात जिस स्थान पर इष्टदेवी तथा साधक का एकात्म और अभिन्नत्वबोध नहीं होता, वह व्यक्ति महापापिष्ठ होता है। वह दुरात्मा शक्तिमन्त्र उपासक महामाया को (महायोनि को) छाग, मेष, (पाठभेद वचन के अनुयायी–महिष, नर), रूरू (कालामृग विशेष), नकुल, उष्ट्र, गो, अश्व, गज, शिवा, सिंह, कच्छप, गर्दभ प्रभृति बलि द्वारा भक्तिभाव से पूजाकरने पर भी कहाँ गमन करेंगे ? अर्थात वह पापिष्ठ निश्चय ही नरक गमन करेगा। ४–६

१। वधबन्धनं २। मन्त्रनाशः ३। मंत्रः ४। सुगोप्यं हि तन्त्रश्चेत्; सुयोग्यं यदि तन्त्रं हि ५। पापं स्यात ६। रक्तरेतसौ ७। साधने ८। पुरस्कृत्य ६। भवेत्; यजेत् १०। महायोनिं ११। छागादिमहिषैर्नरैः। कलिते। नरबलि निषिद्ध १२। नकुलै १३। शिवाम्ब भिः १४। कच्छपैश्च।

योनिदर्शनमात्रेण कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
चन्द्रसूर्योपरागे च यदि योनिं प्रपूजयेत् ।। ७।।
तर्पणं योनितत्वेन न पुनर्ज्जायते भुवि ।
क्रमशो लोकमासाद्य देवीलोके महीयते ।। ८।।
तत्र तिष्ठेत् साधकेन्द्रः शक्तयायुक्तो महेश्वरः ।
महाशङ्खेन कल्याणि सर्व्वं कार्य्यं जपादिकम्[1] ।। ६।।
पञ्चतत्त्वं बिना देवि यत् किञ्चित् क्रियते नरै[2]ः ।
तत् सर्वं निष्फलं तस्य अन्ते च नरकं ब्रजेत् ।। १०।।
अन्य[3]- योनि-विभेदस्त्त यत्किञ्चित्[4] साधकोत्तमैः।
कुम्भीपाके[5] च पच्यन्ते यावदाभूतसंप्लवम् ।। ११।।
योनिमुखे मुखं दत्त्वा प्रजपेदयुतं यदि ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।। १२।।

योनिपीठ के दर्शनमात्र से साधक के कोटिकुल का उद्धार हो जाता है। चन्द्र और सूर्य ग्रहणकाल में भी जो व्यक्ति योनिपीठ की पूजा करे और योनितत्त्व द्वारा तर्पण करे, वह व्यक्ति जन्म– मुक्त हो जाता है। वह व्यक्ति मृत्योपरान्त ऊँचे से ऊँचा लोक प्राप्त कर महाशक्ति के साथ संयुक्त होकर उस स्थान पर अवस्थित होता है जहाँ सर्वदा महेश्वर स्थित रहते हैं। साधक श्रेष्ठ महाशङ्ख की माला का जाप करते हुए समस्त कार्य (समस्त काम्य जप) सम्पन्न करेगा। १–६

महाशक्ति की आराधना के लिए जो व्यक्ति पंचतत्त्व व्यतीत सामान्य काय भी करे, उसकी वह सब साधना निष्फल हो जाती है और वह देहान्त के पश्चात नरक गमन करता है। १०

जो व्यक्ति इस साधना के लिए स्वकीया–या परकीया योनि में प्रभेदात्मक ज्ञान सम्पन्न करता है, वह प्रलयकाल पर्यन्त कुम्भीपाक नामक–नरक में तप्त तेल में पकाया जाता है। ११

साधक योनिमुख में अपना मुख संलग्न करके यदि दस सहस्र मंत्र जप करे तो उसके कोटि जन्मार्जित पाप तत्क्षण विनष्ट हो जाते है। १२

१। सर्वकाम्य जपादिकं। २। कुरूते नरः । ३। आत्म ४। क्रियते; अन्य ५। कुम्भीपाक–नरक विशेष, जहाँ अपराधी को तप्त तैल में उबाला जाता है

रेतोयुक्तानि पुष्पाणि स्वपुष्प-मिश्रितानि वा[1] ।
कारणेनाभिमन्त्र्याथ दद्यात् योनौ प्रयत्नतः ।। १३ ।।
स भवेत् कालिकापुत्र इति ख्यातिमुपागतः ।
योनिमूले वसेद गौरी[2] योन्याश्च नगनन्दिनी।। १४ ।।
काली तारा योनिचिह्ने कुन्तले छिन्नमस्तका ।
बगलामुखी च मातङ्गी वसेत् योनि-समीपतः ।। १५ ।।
योनिगर्त्ते महालक्ष्मीः षोड़शी भुवनेश्वरी ।
योनि[3]-पूजनमात्रेण शक्तिपूजा भवेद ध्रुवम् ।। १६ ।।
पक्ष्यादि-बलिजातीनां रूधिरैश्च प्रपूजयेत् ।
योनि योनीति[4] यो व्यक्ति[5] जपकाले च साधकः ।। १७ ।।
तस्य योनिः प्रसन्ना स्याद्भुक्ति[6]-मुक्ति प्रदायिनी।
योगी चेन्नैव भोगी स्याद्भोगी च न तु योगवान्[7] ।। १८ ।।
योगभोगात्मकं[8] कालं यदि योनि प्रपूजकः[9] ।
योनिपूजां विना दुर्गे सर्व्वपूजा वृथा भवेत् ।। १६ ।।
योनिमध्ये प्रधाना च चाण्डाली[10] गणनायिका ।
तस्याः[11] पूजनमात्रेण मम तुल्यो न संशयः ।। २० ।।

रेतयुक्त पुष्प अथवा स्वयम्भुकुसुम मिश्रित पुष्प कारण–सहित अभिमन्त्रित करके जो व्यक्ति योनिपीठ पर प्रदान करे, वह कालिका–पुत्र के समान ख्यातिलाभ करता है। योनिमूल में गौरी योनिदेश में पार्वती, योनिचक्र में काली एवं तारा, योनिकुण्डल में छिन्नमस्ता, योनि के निकट बगलामुखी एवं मातङ्गी, योनिगर्भ में महालक्ष्मी, षोडशी एवं भुवनेश्वरी निवास करती हैं। योनिपीठ की पूजा–अनुष्ठानमात्र ही आद्याशक्ति की पूजा है। यह निश्चित सत्य है। १३–१६

पक्षी अथवा बलि के लिए निर्दिष्ट अन्य पूर्वलिखित (पूर्वोक्त पञ्चम एवं षष्ठ श्लोक द्रष्टव्य है) पशुओं के रक्त द्वारा योनिपीठ की पूजा करना चाहिए। जपकाल के समय जो व्यक्ति 'योनि, योनि' शब्द का उच्चारण करता है, आद्याशक्ति उससे प्रसन्न होती है और उसे वाञ्छित भोग एवं मुक्ति प्रदान करती है।

योगी व्यक्ति भोगी नहीं होता, और भोगी व्यक्ति भी योगवान नहीं होता। किन्तु योनिपीठ की साधना करने वाला व्यक्ति योग एवं भोग–दोनों को ही प्राप्त करता है। हे दुर्गे ! योनि पूजा से भिन्न समस्त पूजा ही निष्फल होती है। १७–१६

चण्डाली कुलनामिका योनिमध्य सर्वप्रधान है। इस योनि की पूजामात्र से ही साधक मेरे समकक्ष हो जाता है। २०

१। रेतमुक्तेन पुष्पेण– स्व पुष्प मिश्रितेनवा २। देवी ३। योनिः ४। योनि यौंनिरिति समीचीनः पाठः ५। वेत्ति ६। प्रसन्नास्या भक्ति ७। भोगी च नैव योगी स्याद् योगी च न तु भोगवान्। ८। योगभोगार्थकं केलिं ६। योनिं प्रपूजयेत्। १०। चाण्डाल, चाण्डालि। ११। तस्यां।

किं ज्ञानैः[१] किं तपोदानैः[२] किं जपैः किं कुलामृतैः।
योनिपूजां विना दुर्गे सर्व्वञ्च[३] निष्फलं भवेत् ।। २१।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं मम सर्व्वस्व-साधनम् ।
स्वयं यद्य[४]-समर्थःस्यात् योनिपूजन-तत्परः ।। २२।।
साधकं[५] वृणुयात् दुर्गे[६] वस्त्रालङ्करणादिभिः ।
पूजयित्वा महायोनिं तत्पश्चाद् अन्यमण्डलम्[७] ।। २३।।
दण्डवत् प्रणिपत्याथ योनिमुद्रां निरीक्षयेत् ।
यस्य योनौ सदा भक्तिः साधने[८] च तथा प्रिये ।। २४।।
तस्य दुर्गा प्रसन्ना स्यात् किमन्यै र्वहुभाषितैः ।
क्षतयोनिः पूजितव्या अक्षतां नैव पूजयेत् ।। २५।।
अक्षतां पूजनाद्देवि सिद्धिहानिः पदे पदे[९] ।

इति योनितन्त्रे तृतीय पटलः।।

ज्ञान, तपस्या, दान, जप या कुलामृत प्रभृति क्रियाओं से क्या फल प्राप्त होता है ? हे दुर्गे ! योनिपूजा से पृथक सभी कुछ निष्फल होता है। २१

समस्त साधनाओं में यत्कथित श्रेष्ठ साधनापद्धति हर किसी साधारण व्यक्ति को नहीं ज्ञापन करना। हे दुर्गे ! योनिपूजा के पश्चात साधक यदि स्वयं योनिपूजा में असमर्थ हो, तो उसे वस्त्रालङ्कार प्रभृति वस्तुएँ किसी अन्य साधक को प्रदान करके योनि पूजा के लिए वरण करना चाहिए। महायोनि की पूजा करने के अनन्तर मण्डल के मध्य में आगमन करना चाहिए। २२–२३

इसके पश्चात् योनिपीठ को दण्डवत् प्रणिपातपूर्वक योनिमुद्रा का निरीक्षण करना चाहिए। आद्याशक्ति के प्रति जो व्यक्ति सदैव भक्तिमान एवं सर्वदा योनिपीठ के प्रति साधन–तत्पर होता है, दुर्गा उसके प्रति प्रसन्न होती हैं। इस विषय में और अधिक क्या कहा जाय ! सर्वदा संगमप्राप्ता (सिद्धा) कुलयुवती को पूजा के निमित्त ग्रहण करना चाहिए। अक्षतयोनि (अज्ञान शक्ति) नारी को पूजार्थ कदाचित नहीं ग्रहण करना चाहिए। अक्षतयोनि नारी की योनिपीठ पूजा करने से पग–पग पर सिद्धिहानि होती है। २४–२५

योनिपीठ के तृतीय पटल का अनुवाद समाप्त।

१। यागैः २। तपेर्दानैः। जपेर्ध्यानैः ३। सर्व्वं हि। ४। यदि ५। साधनं ६। पूजयेद्भगैः ७। पश्चादागत्यमण्डलं। ८। साधके। ६। प्रजायते

चतुर्थः पटलः

शिव उवाच—

महाचीन क्रमोक्तेन सर्वं कार्यं जपादिकम् ।
इति ते कथितं देवि योनिपूजा-विधिर्म्मया[1] ।। १।।
सुगोप्यं यदि देवेशि तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
कोचाख्याने च[2] देशे च योनिगर्त्तसमीपतः ।। २।।
गङ्गायाः पश्चिमे भागे माधवी[3] नाम विश्रुता ।
गत्वा तत्र महेशानि योनिदर्शनमानसः ।। ३।।
तत्र चाहर्निशं[4] देवि योनिपूजन-तत्परः[5] ।
भिक्षाचार-प्रसङ्गेन गच्छामि च दिवानिशम् ।। ४।।
माधवी सदृशी योनि-र्नास्ति योनि र्महीतले ।
तत्कुचौ कठिनौ दुर्गे योनिस्तस्याः सुपीनता[6] ।। ५।।

महादेव ने कहा— महाचीनाचार या महाचीन तन्त्रोक्त विधानानुसार पूर्वोक्त समस्त पूजा एवं जप समस्त कार्य सम्पन्न करना चाहिए। चीनाचार कथित मत ही यत्कथित योनिपूजा पद्धति मानना चाहिए। यह साधन पद्धति अत्यन्त गोपनीय होते हुए भी केवल मात्र तुम्हारे प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण ही मैंने उसे प्रकाशित किया है। कोच नामक देश में गङ्गा के पश्चिम भाग में योनिगर्त्त के समीप माधवी नामक

विख्यात योनिपीठ वर्तमान है। योनिदर्शन की आकांक्षा एवं योनिपूजा की अभिलाषा से मैं उस स्थान पर अहर्निश गमन करता हूँ। १ – ४

भिक्षाचार के प्रसङ्ग में मैं सर्वदा उस स्थान पर जाता हूँ। माधवी सदृश योनिपीठ पृथ्वीपर और दूसरा नहीं है। उस स्थान पर देवी के कुचद्वय कठिन एवं योनि अत्यन्त स्थूल है। ५

१। इति ते कथितं योनिपूजा विधानं (विधिं) मया देवि। २। कोचाख्यानेन। ३। तानाम्रा च माधवी रव्या वर्त्तमान कामरूप जिला के अन्तर्गत कामाख्यादेवी के मन्दिर को ही माधवी नाम से अभिहित किया जाता है अथवा नहीं इसे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ४। अहं चाहर्निशाम्। ५। दर्शनमानसः। ६। काठिनता।

तस्या पूजनमात्रेण शिवोहहं श्रृणु पार्व्वति ।
राधायोनिं पूजयित्वा कृष्णः कृष्णत्वभागतः ।। ६।।
श्रीरामोजानकीनाथः सीतायोनि-प्रपूजकः ।
रावणं सकुलं हत्वा पुनरागत्य सुन्दरि ।। ७।।
अयोध्यां नगरीं रम्यां वसतिं कृतवान् स्वयम्।
समुद्रस्य महाविष्णु[१] र्वेलायां वटमूलतः ।। ८।।
भागिनीयोनिमाश्रित्य बलदेवस्तु भौरवः[२] ।
लक्ष्मया सुदर्शनेनापि तिष्ठत्येकोऽ कुतोभयः[३] ।। ९।।
अहं विष्णुश्च ब्रह्मा च मुनयश्च महाशयाः[४] ।
आब्रह्म-स्तम्बपर्यन्तं योनौ सर्वं प्रजायाते[५] ।। १०।।
योनितत्त्वस्य माहात्म्यं को वेद भुवनत्रये ।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।। ११।।
पञ्च तत्वं बिना देवि सर्वञ्च निष्फलं भवेत् ।
सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैश्रणवं परम्[६] ।। १२।।

हे पार्वति ! इस योनिपीठ पर देवी की पूजा करने से मैंने शिवत्व लाभ किया है। राधा की योनिपूजा करके श्रीकृष्ण ने कृष्णत्त्व प्राप्त किया। सीता की योनि—पूजा के प्रभाव से श्रीराम ने रावण का समूल विनाश पुनः रमणीक अयोध्या नगरी में लौटकर वास किया। समुद्रयोनि का आश्रय लेकर महाविष्णु (जगन्नाथ) ने बेलाभूमि से वटमूल का सहारा लेकर अवस्थान किया था। ६—८

भगिनीयोनि (शक्ति) का आश्रय लेकर बलदेव ने भैरवत्व लाभ किया था तथा लक्ष्मी ने अकूत के भय से सुदर्शन के मध्य अवस्थान किया था। ९

मैं (रुद्र), विष्णु, ब्रह्मा, महामना मुनिगण एवं ब्रह्म योनि के तत्त्व एवं माहात्म्य को इस संसार में कौन जानने में सक्षम है ? हे देवि ! मद्य मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन—इस पाँच तत्त्वों के बिना समस्त साधना निष्फल है। सभी शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ है, वेद से वैष्णव उत्तम हैं। ऐसा व्यक्ति लक्ष्मी के द्वारा भी विचलीत नहीं किया जा सकता एवं सुदर्शन चक्र का भय भी उसे डरा नहीं सकता। वह सर्वथा निर्भय रहता है। (अकुतोभय) जिसे कहीं से भी भय न हो। १०—१२

१ महादेवि। २ भग्नीयोनि समाश्रित्य; बलदेवेन संयुतः। ३ दक्षिणं दर्शनेनापि तिष्ठत्येके कुतो भयं; लक्ष्मीः सुदर्शनेनापि। ४ मुनयश्चामलाशयाः। ५ सर्व्वे महाशयाः। ६ सव्वेभ्योश्चोत्तमा वेदो वेदेभ्यो वैष्णवः परः।

वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् ।
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।। १३ ।।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं तत्रापि[1] योनिलम्पटः ।
सूर्यखद्योतयोर्यद्वत् मेरुसर्षपयोरिव[2] ।। १४ ।।
कुलीनः सर्वविद्याना[3] मधिकारीति गीयते ।
यदि भाग्यवशेनापि कुलीनदर्शनं लभेत्[4] ।। १५ ।।
भक्ष्यै र्भोज्यैश्च[5] संतोष्य प्रार्थयेद् बहुयत्नतः ।
आगच्छ साधकश्रेष्ठ योनिपूजन-तत्पर ।। १६ ।।
तव दर्शनमात्रेण कृतार्थोऽस्मि न संशयः[6] ।
पशुना सह संलापः पशुसंसर्ग एव च ।। १७ ।।
यदि दैवान्महादेवि योनिदर्शन-तत्परः[7] ।
तिलकं योनितत्त्वेन तदा शुद्धो भविष्यति ।। १८ ।।
कुमारी पूजनं[8] दुर्गे कुलीनभोजनं तथा ।
प्रधान द्वयमेवास्मिन्[9] ग्रन्थेहपि च सुनिश्चितम्[10] ।। १९ ।।
अंतःशाक्ता वहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः ।
नानावेश[11]-धराः कौलाः विचरिन्त महीतले ।। २० ।।

वैष्णव से शैव, शैव दक्षिणाचारी, से दक्षिणाचारी से वामाचारी, वामाचारी से सिद्धान्ताचारी एवं सिद्धान्ताचार से कौलगण श्रेष्ठतर हैं। कौल की अपेक्षा योनिसाधक श्रेष्ठतर है। जिस प्रकार तारों की तुलना में सूर्य एवं सर्षप की तुलना में मेरू पर्वत, उसी प्रकार कौलगण के बीच योनिपीठ के उपासकगण अतुलनीय हैं। १३–१४

कुलीनसाधक सभी विधाओं का अधिकारी है। यदि भाग्यवश किसी कुलीन अर्थात कौल साधक का दर्शन हो जाय तो सर्वप्रथम भक्ष्य एवं भोज्य द्वारा उन्हें सन्तुष्ट कर प्रार्थना करना चाहिए— हे साधक श्रेष्ठ, आय योनिपूजन के लिए तत्पर है। आप मेरे घर आइए। आपके दर्शनमात्र से मैं कृतार्थ हुआ। इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं योनिदर्शन के उपरांत (पाठान्तर के रूप में वचतानुयायी—कुलाचारी) यदि पशु साधक के साथ वार्तालाप करे अथवा पशु साधक के संस्पर्श में आए तो योनितत्त्व के द्वारा तिलक प्रदान करके अपनी शुद्धि सम्पादन करना चाहिए। १५–१८

कुमारी पूजन (पाठान्तरघृत वाच्यार्थ—कुमारी भोजन) एवं कुलीन भोजन, यही दो योनिपीठ साधनपद्धति लिखित ग्रन्थसमूहों में प्रधान और सुनिश्चत ग्रन्थ हैं। कुलीनसाधक के मन में शाक्तभावसम्पन्न, वह्यिक आचरण में शैव एवं सभास्थल में वैष्णवमतावलम्बीरूप में स्वयं को प्रकाशित करना चाहिए। कुलीन साधक नाना प्रकार के वेश धारण करके पृथ्वी पर विचरण करते हैं। १९–२०

---

१ कौलाच्च। २ सूर्यनवद्योतयोर्मध्ये त्रिषु लोकेषु वा पुनाः। ३ सर्व्वतत्त्वाना, सर्व्वतत्त्वाणा। ४ भवेत्। ५ भक्ष्यभोगैश्च। ६ कृतार्थोस्मिन्न संशयः। ७ यदि भूया महादेवि आचरेत्। ८ भेजनं। ९ द्वयमेवास्मिन्। १० ग्रन्थो देवि सुनिश्चितं। ११ नानारूप।

जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य वंशे प्रजायते ।
कुलीनस्तं कुलं ज्ञेयं पवित्रं नगनन्दिनि ।। २१।।
पादप्रक्षालनं यत्र कुलीनः क्रियते यदि ।
तस्य देहश्च गेहश्च पवित्रश्च न संशयः ।। २२।।
योनिलम्पटः कुलीनश्च यस्मिन् देशे विराजते।
स देशः पूज्यते देवैः ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभिः[1] ।। २३।।
कुलीनं प्रति दानञ्च अनन्तायोपपद्यते ।
पशुहस्ते[2] प्रदानञ्च सर्व्वत्र निष्फलं[3] भवेत् ।। २४।।
कुलीनस्य च माहात्मयं मया वक्तुं न शक्यते।
कुलीनश्चापि संतोष्य मुक्तः कोटिकुलैः सह ।। २५।।
केवलं कुलयोगेन प्रसीदामि न संशयः ।
चतुर्था श्रमिणां मध्ये[4] अवधूताश्रमो[5] महान् ।। २६।।

सहस्रजन्मों में भी जिसके वंश में कोई कौलसाधक जन्म ले, उसके कुल को ही कुलीन एवं पवित्र मानना चाहिए। हे पार्वति ! यदि कौलसाधक किसी के भी घर पैर धोए, तो उस व्यक्ति का घर एवं देह पवित्र हो जाता है। जिस देश में योनिपीठ–साधक कौल विद्यमान हो, उस देश की पूजा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रभृति देवगण भी करते है। २१–२३

कौलसाधक का जो कुछ मान किया जाय, वही अनन्तफलप्रसविनी होता है। पशुसाधक को जो कुछ दान किया जाता है वह निष्फल हो जाता है। कुलीन को अर्थात कौलसाधक को दान, देने के फल को मैं शब्दों में नहीं वर्णन कर सकता। कुलीन को संतुष्ट करने से व्यक्ति अपने कोटिकुल के साथ मुक्ति लाभ करता है। २४–२५

मैं केवलमात्र कुलसाधक के पास ही अनुग्रह प्रदर्शन करता हूँ। इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं । चतुर्याश्रमी आश्रम में जो अवधूत आश्रय ग्रहण करता है, वह महान् है। चतुर्याश्रमी सन्यासी, सन्यासिओं में सर्वश्रेष्ठ वही होता है, जो अवधूत हो (अवधूत आश्रम में हो) २६।

---

१ तत्र देशे च पूज्याश्च ब्रह्माविष्णुशिवादयः। २ पशुहस्त। ३ विफलं। ४ देवि। ५ अवधूताश्रमी।

तत्राहं कुलयोगेन महादेवत्वमागतः ।
तत्रापि च महादेवि योनिपूजन-तत्परः ।। २७।।
तव योनिप्रसादेन त्रिपुरं हतवान पुरा ।
द्रौपदीयोनिमाश्रित्य पाण्डवा जयिनो[1] रणे ।। २८।।
अभावे कन्यकायोनिं वधूयोनिं तथैव च ।
भागिनीयोनिमाश्रित्य शिष्याणांयोनिमाश्रयेत् ।। २६।।
प्रत्यहं पूजयेद् योनिमन्यथा मन्त्रमर्च्चयेत्[2] ।
वृथा पूजा न कर्त्तव्या योनिपूजां बिना प्रिये।। ३०।।
अन्यथा जपमात्रेण विहरेत् क्षितिमण्डले ।। ३१।।
इति योनितन्त्रे चतुर्थः पटलः।। ४।।

इसी कारण मैं कुल–योग अवलम्बन में शिवत्वलाभ करता हूँ। तथापि मैं सर्वदा योनिपूजन–तत्पर (सदा सचेष्ट एवं यत्नवान) रहता हूँ। हे महादेवि ! तुम्हारी योनि अर्थात शक्ति प्रसाद के द्वारा मैंने पुराकाल में त्रिपुरासुर का वध किया था। २७–२८

अन्य योनिपीठ के अभाव में कन्या, वधू, भागिनी अथवा शिष्या की योनि का अवलम्बन करना चाहिए। (शिष्याणीशब्द देखा नहीं सम्भततः "शिष्याणां" पाठ हो तदनुसार शिष्यओं (चेली) की योनि अर्थ सम्भव है) प्रत्यहं योनिपीठ की अर्चना करनी चाहिए, अन्यथा यन्त्र (देवताओं का अधिष्ठान चक्र) की अर्चना करनी चाहिए। योनि पूजा से भिन्न अन्य पूजा वृथा नहीं करनी चाहिए। अथवा केवलमात्र जप करते करते क्षितिमण्डल में विचरण करना चाहिए। २६–३१

---

१ प्रान्तवो विजयी। २ मन्त्रमुच्चरेत्।

योनितन्त्र के चतुर्थ पटल का अनुवाद समाप्त।

पंचमः पटलः

श्रीमहादेव उवाच—

महाविद्यामुपास्यैव यदि योनिं न पूजयेत् ।
पुरश्चर्या[1] शतेनापि तस्य मन्त्रो न सिद्धयते ।। १।।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा योनिगर्त्ते महेश्वरि ।
जन्मान्तर-सहस्राणां पूजा तस्य प्रजायते ।। २।।
गुरूरेवः शिवः साक्षात् तत्पत्नी तत्स्वरूपिणी[2] ।
तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत् ।। ३।।
सर्वसाधारणीं[3] योनिं मर्द्दयेत्[4] साधकोत्तमः ।
तिलकं योनितत्त्वेन यस्य भाले प्रद्दश्यते[5] ।। ४।।
तत्र देवासुराः यक्षाः भुवनानि चतुर्द्दश ।
श्राद्धे निमन्त्रयेद् विप्रान् कुलीनान यत्र[6] सुन्दरि।। ५।।
तत् श्राद्धं सफलं[7] तस्य पितरः स्वर्गवासिनः ।
नन्दन्ति पितरस्तस्य गाथां गायन्ति ते मुदा ।। ६।।

महादेव ने कहा— महाविद्या के उपासकगण यदि योनिपीठ की पूजा न करें तो सौ पुरश्चरण सत्त्व द्वारा भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता। १

हे महेश्वरि ! योनिगर्त में (योनिप्रदेश अर्थात शक्तिपीठ में) तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करने से सहस्र जन्मान्तर का पूजाफल प्राप्त होता है। २

गुरू स्वयं शिवतुल्य एवं उनकी पत्नी भी शिवस्वरूपिणी होती है। गुरू पत्नी के साथ रमणमात्र करने से कौल तत्क्षणात् नरकगामी होता है। ३

कौलसाधक के लिए सर्वसाधारण योनि ही मर्दनीय है। जिसके ललाट पर योनितत्त्व का तिलक दिखाई दे, उस स्थल पर देव, असुर, यक्षगण एवं चतुर्दश भुवन निवास करते हैं। हे पार्वति ! यदि श्राद्ध में कुलीनगण अर्थात कौलसाधकगण एवं ब्राह्मणगण निमन्त्रित हों, वह श्राद्ध सफल हो जाता है। उस व्यक्ति के स्वर्गवासी पितृगण उसके कार्य हेतु आनन्दमग्न होकर नृत्य करते हैं। ४–६

---

१ पुरश्चर्य्या (पुरश्चरण, पुराक्रिया) – अपने इष्टदेवता के मंत्रसिद्धि हेतु इष्टदेवता की पूजा, मन्त्रजप, होम, तर्पण, अभिषेक,ब्राह्मणभोजनरकय पञ्चाङ्ग साधना।
२ तस्य पत्नी हरप्रिया। ३ साधारणां। ४ योनिमर्च्चयेत्। ५ यस्य चित्तं प्रहस्यते। ६ यदि। ७ तत्प्राणसफलं।

अपि नास्मत्[1] कुले जातः कुलज्ञानी भविष्यति।
यस्या[2] योनौ साधकेन्द्रः पूजनं क्रियते दृढम्[3] ।। ७।।
तद् योनावंधिष्ठितां देवीं साधको भावयेत् सदा[4]।
योनितत्त्वं महादेवि सदा गात्रे प्रमर्द्दयेत् ।। ८।।
तद्गात्रं सफलं तस्य अपि कोटिकुलैः सह ।
स्वलिङ्ग भगगर्त्ते च प्रविशेच्च[5] स्वय यदि ।। ९।।
तदैव[6] महती पूजा लिङ्ग- योनि - समागणे ।
शुक्रोत्सारण-काले च[7] जपपूजापरायणः ।। १०।।
तत् शुक्रं योनितत्त्वञ्च मिश्रयित्वा विधानतः ।
योनिगर्त्ते साधकेन्द्रः प्रदद्याद्धृति[8]-वृद्धये ।। ११।।
तदा[9] श्रीचरणाद्देवीं समुत्पति तेऽङ्गने ।
पूजाकाले च देवेशि अन्यालापं विवर्ज्जयेत् ।। १२।।
कामशास्त्र प्रसङ्गेन तद्योनिं लालयेत्[10] बुधः ।
मातृयोनिं पुरस्कृत्य यदि पूजां करोति यः[11] ।। १३।।
पूजयित्वा विधानेन मैथुनं न समाचरेत् ।
परित्यज्य तद्योनिं क्षतमात्रञ्च ताड़येत्[12]।। १४।।
यदि भाग्यवशेनापि ब्राह्मणी मिलिता प्रिये ।
तद्योनितत्त्वमादाय अन्ययोनिं प्रपूजयेत् ।। १५।।

और उसके वंश में कुलज्ञानी जन्म ग्रहण करने की बात कहकर पितृपुरुषगण उसका कीर्त्तन करते हैं। साधक श्रेष्ठ जिस योनि की पूजा एकाग्रचित्त होकर करता है, उस योनि से स्वीय इष्ट देवी आद्याशक्ति रूप में विद्यमान होकर सदैव उसकी चिन्ता करती हैं। हे शंकरि ! साधक पूर्ण समय स्वगात्र में योनितत्त्व मर्दन करेगा। ७–८

ऐसा होने से उसकी देह धन्य हो जाती है एवं वह व्यक्ति कोटिकुल के साथ मुक्तिलाभ करता है। यदि साधक भगगर्न्त में अपना लिङ्ग प्रवेश कराए, तो योनिलिङ्ग समागम में महती पूजा सम्पन्न होती है। शुक्रोत्सारण के समय जप और पूजापरायण होना चाहिए। इस शुक्र एवं योनितत्त्व को यथाविधान मिश्रित करके साधक स्वीय धृति (विभूति) वृद्धि की कामना से योनिगर्त्त में प्रदान करेगा। हे पार्वती ! उसके पश्चात् देवी के श्रीचरणों में प्रणिपात करेगा। हे देवि ! पूजा के समय अन्य सभी प्रकार की बातों का निषेध है। ९–१२

कामभोगाभिलाषी होने पर साधक उसी योनि को तुष्ट करेगा। यदि मातृयोनि को सन्मुख रखकर पूजा किया जाय, तो ऐसा होने पर यथाविधान पूजा सम्पन्न करके मैथुन से सदैव विरत रहना चाहिए। केवल मातृयोनि का परित्याग करके अन्य समस्त भुक्त योनि को ताड़ित करना चाहिए। यदि भाग्यवशब्राह्मणी कुलशक्ति प्राप्त हो जाय, तो सर्वप्रथम उसकी योनितत्त्व को ग्रहण करना चाहिए, उसके पश्चात् अन्य योनि की पूजा करनी चाहिए। १३–१५

---

१ अपि नः स्वकुले जातः। २ तस्या; वेश्या। ३ यदि। ४ तदयोगिश्चपला देवि साधकं तारयेत्तु सा; तत्योनिश्चामला देवि साधकं तारभेत्त, सा। ५ प्रवेशयति; प्रविष्टश्च; प्रविष्टयति यः स्वयम्। ६ तत्रैव। ७ मात्रेण; तु। ८ प्रदद्यात् यदि कालिके; प्रदद्यादभूतिवृद्धये। ९ यदा। १० ताड़येत। ११ समाचरेत्। १२ मातृयोनिं परित्यज्य योनिमात्रञ्च ताड़येत्।

पञ्चतत्त्वं बिना देवि पशुदीक्षा वृथा भवेत् ।
ओंकारोच्चारणाद्धोमात् शालग्राम-शिलार्च्चनात्।। १६।।
ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रो चाण्डालतां व्रजेत ।
शक्तिं कुलगुहं देवि[1] आश्रयेद्वहुयत्नतः ।। १७।।
पशुदीक्षां समादाय यदि पूजापरायणः ।
तस्य दीक्षा च विद्या च[2] नर कायोपपद्यते[3] ।। १८।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनं गुहमाश्रयेत्[4] ।
कुलीनं गुहमाश्रित्य यदि पूजां समाचरेत्[5] ।। १६।।
तदा योनिः प्रसन्ना स्यात् कृष्णे राधाभगं यथा[6]।
सीताभगं रामचन्द्रे तव योनि र्मयि प्रिये[7] ।। २०।।
योनिकुन्तलमादाय यदि राजगृहं व्रजेत् ।
तस्य कार्याणि सर्वणि फलवन्ति न संशयः ।। २१।।
तदा लिङ्गञ्च संपूज्य पूजयेत् शक्तिरूपिणीम् ।
तिलकं योनितत्त्वेन पुष्पेण[8] धारयेतद् यदि ।
स निर्भतस्य यमं मन्त्री दुर्गालोके महीयते ।। २२।।

ऐ पार्वति ! पञ्चतत्त्व से भिन्न अन्य सभी दीक्षा पशुदीक्ष है और उसकी साधना निष्फल होती है। शूद्र यदि ओंकार का उच्चारण करे तो उसे चण्डालत्व प्राप्त होता है। प्रयासपूर्वक शक्तिमत्र का उपासक कुलगुह का शरण ग्रहण करेगा। पशुदीक्षा–परायण व्यक्ति यदि कुलाचार पूजा में प्रवृत्त हो, तो उसकी दीक्षा और मन्त्र नरक–गमन का कारण होता है। १६–१८

अतएव चेष्टापूर्वक कुलीन (अर्थात् कौल) गुरू का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। श्रीकृष्ण के प्रति राधिका की योनि अर्थात शक्ति जिस रूप में प्रसन्न रहती थी अथवा रामचन्द्र के प्रति सीतायोनि अर्थात उनकी जिस रूप में प्रिय रहती थीं अथवा तुम्हारी योनि अर्थात शक्ति मेरे प्रति जिसरूप में प्रसन्न रहती है; उसी प्रकार यदि कुलीन अर्थात कौलगुरू ग्रहण करके साधक कुलाचार पूर्वक पूजा में प्रवृत्त हो, तो उसकी योनि अर्थात आद्याशक्ति उसके प्रति उसी रूप में प्रसन्न होती है। १६–२०

साधक यदि योनिकुन्तल ग्रहण करके राजगृह में गमन करे तो राजद्वार में उसके समस्त कार्य सिद्ध हो जायेंगे; इसमें किञ्चितमात्र भी सन्देह नहीं। २१

योनितत्त्व एवं स्वयम्भु कुसुम मिलाकर यदि कोई तिलक धारण करे (पाठ्यान्तर वाच्यानुसार–यदि कोई योनितत्त्व द्वारा तिलक प्रदान करे एवं स्वर्णकवच में योनितत्त्व पूर्ण करके उसे धारण करे) तो वह साधक यम की भर्त्सना करते–करते दुर्गालोक में गमन करता है। २२

---

१ दुर्गे। २ व्याख्या चः पूजा च। ३ अभिचाराय कल्प्यते। ४ तस्मात् प्रयत्नतो देवि कुलीनं गुहमाश्रयेत्। ५ यदि योनिं प्रपूजयेत्। ६ कृष्णं राधा यथा तथा। ७ सीतायोनी रामचन्द्रं त्वत्योनिरिव मां प्रति। ८ स्वर्णस्थं; स्वर्णस्थां।

पार्वत्युवाच–

कया च विधया पूज्या योनिरूपा जगन्मयीं ।
किं कृते च प्रसन्ना स्यात् वद मे करूणानिधे।। २३।।
स्वयं वा पूजयेद योनिं अथवा साधकेन च ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं मम[1] ।। २४।।

श्रीमहादेव उवाच–

साधकेन पूजितव्या योनिरूपा जगन्मयी ।
तया लिङ्गं समुद्धृत्य पूजयेत् शक्तिरूपिणीम् ।। २५।।
भगरूपा महामाया लिङ्गरूपः सदाशिवः ।
तयोः पूजनमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ।। २६।।
पुष्पादिकं बलिश्चैव पूजासामग्रीमेव च ।
यदि नैव तदा दुर्गे कारणेन प्रपूजयेत् ।। २७।।
मनुना केवलेनापि[2] तदा योनिं प्रपूजयेत।
प्राणायामो योनिगर्त्ते षडङ्गं[3] मायया प्रिये[4]।। २८।।

पार्वती ने कहा, हे करुणानिधे ! किस विधि के अनुसार योनिरूपा जगन्माता आद्याशक्ति की अर्चना करने एवं किसरूप कार्य करने से आद्याशक्ति प्रसन्न होती हैं, उसे मेरे समक्ष विवृत कीजिए। २३

उपासक स्वयं योनि की पूजा करे अथवा अन्य साधक द्वारा योनि की पूजा कराए–उसके बारे में सबकुछ जानने के लिए मेरे मन में अत्यधिक कुतूहल हो रहा है। २४

महादेव ने कहा– साधक स्वयं योनिरूपा आद्याशक्ति जगन्माता की पूजा करे, कुलशक्ति द्वारा लिङ्ग उद्धृत करके लिङ्गरूपी सदाशिव एवं शक्तिरूपिणी भगरूपा महामाया की पूजा करे। शिव एवं अद्याशक्ति की पूजा करनेमात्र से साधक जीवनमुक्त हो जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। २५–२६

हे दुर्गे ! यदि पुष्पादि, बलि एवं पूजा के अन्य उपकरण न हों तो केवलमात्र कारण अर्थात् मद्य द्वारा आद्याशक्ति की अर्चना करनी चाहिए। २७

अथवा उपकरण के अभाव में केवलमात्र मन्त्र के द्वारा ही योनिपूजा संपन्न करना चाहिए। योनिगर्त्त में (अर्थात केन्द्रस्थान में) प्राणायाम के अन्त में मायाबीज (ह्रीं) द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिए। २८

---

१ मम कौतुहलं महत। २ मधुना कारणेनापि। ३ षडङ्ग–षड्(छः) + अङ्ग अर्थात् छः अंगों का समाहार–षडङ्ग। यथा– जंघाद्वय, बाहुद्वय (कंधे से लेकर हाथ की अँगुलि पर्यन्त), मस्तक और कटि (कमर) यही छः अंश अथवा अवयव।
'जङ्घे बाहुः शिरो मदयं षडङ्गमिदमुच्यते'।
मायाबीज – (ह्रीं) बीज द्वारा न्यास–यथा, (१) ॐ ह्रीं हृदयाय नमः (२) ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। (३) ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। (४) ॐ ह्रैं कवचाय हूँ। (५) ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। (६) ॐ ह्रः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।
४। प्राणायामं योनिगर्त्ते षडङ्गञ्च समाचरेत् इति वा पाठः।

योनिमूले शतं जप्त्वा लिङ्गयोनिं प्रमार्जयेत् ।
सर्वेषां साधनानाञ्च सुसमं परिकीर्तितम्[1] ।। २६।।
एतत् तन्त्रञ्च[2] देवेशि न प्रकाश्यं कदाचन ।
न देयं परशिष्येभ्योऽभक्तेभ्यो विशेषतः[3] ।। ३०।।
योनितत्त्वं महादेवि तव स्नेहात् प्रकाशितम्।। ३१।।
इति योनितन्त्रे पञ्चमः पटलः।। ५।।

तत्पश्चात् योनिमूल में (मूलाधार पद्मे स्थित शिवशक्ति मूले) एक–सौ मन्त्र का जप करके तदनन्तर लिङ्ग (शिव) एवं योनि (शक्ति या शक्तिस्थान) का शोधन करना चाहिए। सम्पूर्ण साधना के निमित्त मैंने इस सहज साधन पद्धति का उद्‌घाटन किया। २६

हे देवेशि ! इस तन्त्र को कहीं भी प्रकाशित नहीं करना। दूसरे शिष्य को अथवा अभक्त अर्थात् श्रद्धाहीन व्यक्ति को इस साधन को प्रदान मत करना। यह योनि तत्त्व (शक्तितत्त्व) अत्यन्त गोपनीय होने के कारण केवलमात्र तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण ही मैंने प्रकाशित किया। ३०–३१

योनि तन्त्र पञ्चम पटल का अनुवाद समाप्त।

---

१ सुगमं कथितं मया। २ एतत्त मन्त्रं। ३ कदाचन।

षष्ठः पटलः

श्रीमहादेव उवाच—

स्नानकाले च देवेशि यदि योनिं निरीक्षयेत्[1]।
सकलं जीवनं तस्य साधकस्य सुनिश्चितम् ।। १।।
स्वयोनिं परयोनिं वा वधूयोनिं[2] विशेषतः ।
अभाव कन्यकायोनिं शिष्यायोनिं निरीक्षयेत् ।। २।।
एतत् तन्त्रं महादेवि यस्य गेहे विराजते ।
नाग्निचौरभयं तस्य अन्ते च मोक्षभाक भवेत्।। ३।।
पश्वादियोनिमाश्रित्य[3] अभावे च प्रपूजयेत् ।
योनिपूजनमात्रेण साक्षाद्विष्णुर्न संशयः ।। ४।।
स्वर्गलोके च पाताले संपूज्य च सुरासुरैः ।
वीरसाधन-कर्माणिदुःखलभ्यानि[4] केवलम् ।। ५।।

महादेव ने कहा— हे देवेशि ! साधक यदि स्नानकाल में योनिपीठ निरीक्षण (विशेषभावे दर्शन) करे, तो साधक का जन्म सफल हो जाता है। यह निश्चित सत्य है। १

स्वकीया, परकीया या वधूयोनि अथवा इनके अभाव में कन्या अथवा शिष्याणी की योनि का निरीक्षण करना चाहिए। २

हे पार्वति ! जिसके घर यह तन्त्र हो, उसके यहाँ चोर का भय नहीं होता तथा मृत्यु के पश्चात् वह व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है। ३

यदि पूजा के लिए कुलयोनि का अभाव हो, तो पूजा के लिए पशुयोनि भी ग्रहण कर लेना चाहिए। योनिपूजनमात्र से ही साधक स्वयं निःसन्देह विष्णुतुल्य हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। ४

स्वर्गलोक या पाताललोक में सुरों या असुरों की पूजा करके तथा वीर साधन प्रभृति कर्म क्रेवलमात्र दुःख का हेतु होता है। ५

---

१ निरीक्षते। २ कन्यायोनिं। ३ मात्रन्त। ४ साध्यानि।

सुगमं साधनं दुर्गे तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
योनितत्त्वं समादाय[1] संग्रामे प्रविशेद् यदि ।। ६।।
जित्वा सर्वानरीन दुर्गे विजयी च न संशयः ।
किं गङ्गास्नानमात्रेण किम्बा तीर्थनिषेवणात्[2] ।। ७।।
नास्ति योनौ समा भक्तिरन्यत् सर्वं वृथा भवेत् ।
पञ्चवक्त्रैश्च देवेशि योनिमाहात्म्यमेव च ।। ८।।
तदा वक्तुं न शक्नोमि शृणुष्व नगनन्दिनि ।
तव योनिप्रसादेन महादेवत्वमागतः[3] ।। ६।।
नवीन कुन्तलां योनिं मर्द्दयेत् यो हि साधकः[4] ।
स मुक्तो हि महद्दुःखात् घोरसंसारसागरात् ।। १०।।
बहुना किमिहोक्तेन[5] शृणु पार्वति सुन्दरि ।
वक्तुं कोहपि[6] योनितत्त्वं लोके कोऽपि प्रशस्यते[7] ।। ११।।
शिवविष्णुं विना देवि कः क्षमो वर्णितुं भवेत् ।
क्षमस्व मम दौर्बल्यं[8] मात-र्दुर्गे क्षमस्व मे ।। १२।।
चापल्यात्तु[9] मया किञ्चित् वर्णितं तव सन्निधौ ।। १३।।

किन्तु हे दुर्गे ! यह सुगम साधन पद्धति मैंने मात्र तुम्हारे प्रति स्नेहवशतः प्रकाशित किया है। यदि कुलसाधक योनितत्त्व ग्रहण कर पाठान्तर वाच्यार्थानुसार—आघ्राण करके संग्राम करने जाय, तो वह समस्त शत्रु को पराजित करके संग्राम में जपलाभ करता है। उसे गङ्गास्नान अथवा तीर्थसेवा का क्या फल मिलेगा ? योनिपीठ की भक्ति के अतिरिक्त अन्य समस्त साधना इसकी तुलना में निरर्थक है। हे देवेशि ! पाँच मुख से योनिपीठ—माहात्म्य कीर्त्तन करके भी मैं उसके बारे में पूरा वर्णन नहीं कर सकता। केवल मात्र तुम्हारी योनि (शक्ति) के प्रभाव से ही मैंने शिवत्व लाभ किया है। ६–६

जो कुलसाधक नवीनकुन्तला योनि मर्दन करता है, वह घोर संसार सागर से मुक्ति लाभ कर लेता है। १०

हे पार्वति ! हे चारवङ्गि ! इस संबंध में और क्या कहूँ ? इस योनितत्त्व का संपूर्ण वर्णन करने में कौन सक्षम है ? ११

शिव एवं विष्णु के अतिरिक्त दूसरा कौन इस तत्त्व का वर्णन कर सकता है ? हे मातः ! हे दुर्गे ! चपलतावश योनितत्त्व के संबंध में तुम्हारे निकट जो कुछ भी कहा है उसके लिए चपलता संबंधी मेरी दुर्बलता को क्षमा करो। १२–१३

---

१ समाघ्राय। २ किं वा साधनमात्रेण किंवा तीर्थनिषेवनम्; किं गंङ्गास्नानमात्रस्त्त किं तीर्थानिसेवनं। ३ इयं पंक्तिः क्वचित पुस्तके दृश्यते। ४ नवीनकुन्तलां देवीं उद्धरेत् योनिसाधकः। ५ बहुनात्र किमुक्तेन। ६ वक्ताहंदेवि। ७ प्रशंस्यते। ८ दौर्व्वाच्यं; दौरात्म्यं। ६ चपलेहस्मिन्, चाञ्चल्यात्तु।

देव्युवाच–

देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
वीरसाधन-कर्म्माणि श्रुतानि तन्मुखात् प्रभो ।। १४ ।।
सुगमं[1] साधनं देव श्रुतं बहुविधं मया ।
यत त्वया कथितं देव कलौ तच्च[2] कथं भवेत् ।
विश्वासोऽत्र महादेव संशयोऽभूत् सदा मम ।। १५ ।।

महादेव उवाच –

शृणु पार्वतिचार्वङ्गि शृणुष्व नगनन्दिनि ।
शृणु त्वं परया भक्तया सावधानं शृनुष्व मे ।। १६ ।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणान्तेहपि[3] न संशयः ।
स्वयोनिरिव देवेशि गोपनीयं[4] सदा प्रिये ।। १७ ।।
निगूढंते प्रवक्ष्यामि सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।
यस्यानुठानमात्रेण[5] भवाब्धौ न निमज्जति ।। १८ ।।

पार्वती ने कहा – हे देवदेव जगन्नाथ ! आप संसार की सृष्टि स्थिति एवं प्रलय करने वाले हैं। वीरसाधन प्रभृति बहुविध साधन एवं अन्यान्य बहुविध सहजसाध्य साधन भी मैने आपके मुख से सुना है। हे देव ! आपने जो कुछ कहा है, कलिकाल में वह किस रूप में सिद्ध या फलदायक होगा, इस विषय में मुझे सदैव ही सन्देह बना रहता है। १४–१५

महादेव ने कहा – हे चार्वङ्गि, पार्वति ! हे नगनन्दिनि ! मैं जो कुछ बोल रहा हूँ उसे अवहितचित्त होकर परम श्रद्धापूर्वक सुनो। यह विद्या मृत्यु पर्य्यन्त भी जिस किसी को अर्थात किसी साधारण व्यक्ति को मत प्रदान करना। हे प्रिये ! यह विद्या स्वयोनिवत् गोपनीय है। १६–१७

मैं तुमको इसका निगूढ़ एवं सुनिश्चित सत्य कहता हूँ; जिसके अनुष्ठान मात्र से साधक भवसमुद्र से निमज्जित नहीं होता। १८

---

१ सुसमं। २ नास्तिकानां। ३ प्राणान्ते च। ४ गोपनीया। ५ यस्यानुष्ठितमात्रेण।

योनिरूपा महामाया लिङ्गरूपः सदाशिवः ।
रेतसा तर्पणं तस्या मद्यमांसैश्च सुन्दरि ।। १६।।
योन्यां लिङ्गं समुत्क्षिप्य[1] तत्त्वमादाय सुन्दरि ।
योनौ किञ्चिद्विनिक्षिप्य[2] शक्तौ सर्वं समर्पयेत्[3] ।। २०।।
तत्त्वेन तोषयेद्देवीं भगरूपा जगन्मयी ।
प्रत्याद्यातेन[4] देवेशि ब्रह्महत्या व्ययोहति[5] ।। २१।।
नाल्पपुण्यरतां[6] दुर्गे विश्वासो जायते ध्रुवम्।
विश्वासात् सिद्धिमान्पोति विश्वासान्मोक्षमेव च ।। २२।।
अविश्वास च देवेशि नरकं जायते ध्रुवम् ।
सर्वसाधन मध्ये तु[7] योनिसाधनमुत्तमम् ।। २३।।
भुक्त्वा पीत्वा च देवेशि यदि योनिं प्रपूजयेत्।
कोटिजन्मार्ज्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।। २४।।

महामाया परमाप्रकृति आद्याशक्ति योनिरूपा एवं सदाशिव लिङ्ग रूपी हैं। रेत, मद्य और मांस द्वारा महामाया का तर्पण करना चाहिए। योनि से लिङ्ग निक्षेप करके योनि से तत्त्व संग्रह करके, उसका थोड़ा अंश योनि के बीच निक्षेप करके, शेष सब आद्याशक्ति को समर्पित करना चाहिए। पंचतत्त्व एवं योनितत्त्व द्वारा भगरूपा जगन्मयी आद्याशक्ति को संतुष्ट करना चाहिए। इसके विपरीत अर्थात उक्त तत्त्व समूह द्वारा महामाया को संतुष्ट न करने पर साधक ब्रह्महत्या के पाप में लिप्त हो जाता है। १६–२१

हे दुर्गे ! इस साधन पद्धति से बहुपुण्यं का फल सुनिश्चित रूप से विश्वास को जन्म देता है और विश्वास से सिद्धि एवं सिद्धि प्राप्त होने से मोक्ष प्राप्त होता है। २२

इस साधन पद्धति में अविश्वास करने से निश्चय ही साधक नरक गमन करता है। समस्त प्रकार की साधन पद्धति के मध्य योनिपीठ की साधना ही सर्वोत्तम है। हे देवेशि ! भोजन एवं पान संपन्न करके यदि साधक तत्पश्चात योनिपीठ की पूजा करे तो उसके कोटि जन्मार्ज्जित पाप भी तत्काल नष्ट हो जाते हैं। २३–२४

---

१ समाक्षिप्य; समादाय। २ लिङ्ग समाक्षिप्य। ३ योनौ किञ्चित समाक्षिप्य शक्तौ सर्वं विनियेत्। योनौ किञ्चित समाक्षिप्य शक्तौ सर्वं समर्पयेत्। ४ प्रत्युद्घातेन। ५ व्यापाहति। ६ पुण्यतरां। ७ मध्ये च; मध्येषु।

भोगेन लभते मोक्षं भोगेन लभते सुखम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधको भोगवान भवेत् ।। २५।।
योनिनिन्दाघृणालल्लां नर्ज्जयेन्मतिमान् सदा ।
कुलाचार-प्रसङ्गेन[1] यदि योनिं न पूजये त ।। २६।।
किं तस्य साधनै र्लक्षैः सर्वं तस्य वृथा भवेत् ।
सूक्ष्मांशुना[2] योनिगर्त्तं मर्ज्जनं कुरुते यदि ।। २७।।
तस्य देहस्य गेहस्य पापं विनश्यति ध्रुवम् ।
किं गङ्गास्नानमात्रेण किम्बा तीर्थनिषेतनात् ।। २८।।
पूज्यते साधकेन्द्रेण भगरूपा सदा प्रिये ।
बहुना किमिहोक्तेन श्रृणुष्व प्राणवल्लभे ।। २६।।
पूजनं साधकानाञ्च सर्वसाधारणं प्रिये ।
पञ्चतत्त्वं बिना देवि चतुर्थञ्च वृथा भवेत् ।। ३०।।
पञ्चमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः ।
बिना शक्तया च यत् पानं तत् सर्वं विफलं भवेत्।। ३१।।
शक्तयुच्छिष्टं पिवेत् द्रव्यं वीरोच्छिष्टञ्च चर्ब्वणं ।
एवं कृत्वा महायोनिं पूजयित्वा दिवानिशम् ।। ३२।।

इस साधन पद्धति में भोग द्वारा ही सुख एवं भोग द्वारा ही मोक्ष लाभ होता है। अतएव इस साधना के लिए साधक को सर्वप्रयत्न सर्वदा भोग के लिए तत्पर रहना चाहिए। बुद्धिमान साधक योनिनिन्दा, घृणा और लज्जा का सर्वदा परिहार करता है। यदि कुलाचार पद्धति से योनिपूजा न की जाय, तो साधक द्वारा अन्य लाखों प्रकार की साधना भी निष्फल होती है। साधक यदि सूक्ष्मा मला योनिगर्त्त (शक्तिकेन्द्र) मार्ज्जना (संस्कार शोधन) करे, तो उसकी देह एवं गृहगत पाप विनष्ट हो जाते हैं। गङ्गास्नान या तीर्थसेवा से अन्य क्या लाभ होता है ? २५—२८

हे प्रिये ! योनिरूपा महामाया की पूजा करना ही साधक का एकमात्र कर्त्तव्य होता है। इस संबंध में अधिक कहने का क्या फल होगा ? हे प्राणवल्लभे ! सुनो। २६

कौलसाधकों का पूजा करना अति साधारण कार्य है। हे देवि ! पञ्चतत्त्व के बिना चतुर्थ व्यर्थ होता है। पञ्चतत्त्व बिना अर्थात (मैथुन अपेक्षा) शाक्त साधक के लिए अधिकतर सुख या मोक्षदायक अन्य कोई श्रेष्ठतर पन्थ नहीं है। कुलशक्ति से भिन्न जो कुछ भी पान किया जाय, वह सब निष्फल होता है। शक्ति की इच्छिष्ट (कारण) पान करना एवं वीरोच्छिष्ट चर्बण करना (पाठान्तर शब्द का तात्पर्य—वीरगण खाद्यवस्तु चर्बण करना) उक्त पद्धति में आद्याशक्ति की योनिपीठ की रात—दिन पूजा करना होता है। ३०—३२

---

१ प्रसादेन। २ सूक्ष्ममूला।

भुक्तवा पीत्वा महेशानि विहरेत् क्षितिमण्डले[1]।
विधृत्य तुलसीमाल्यं[2] कुर्याच्च हरिमन्दिरम् ।। ३३।।
कथोपकथनं वापि[3] श्रीहरेर्गुणकीर्त्तनम् ।
हरिनान्मा जातभावो विहरेत् पशुसन्निधौ।। ३४।।
गुप्ता गुप्ततरा पूजा[4] प्रकटात् हानिरेव च ।
वरं पूजा न कर्त्तव्या पशोरग्रे च पार्वति ।। ३५।।
पुष्पाञ्जलित्रयेणपि यदि योनिं प्रपूजयेत् ।
तस्यालभ्यानि कर्म्माणि न सन्ति भुवनत्रये[5] ।। ३६।।
इति योनितंत्रे षष्ठः पटलः।। ६।।

हे महेशानि ! उसके पश्चात् पानभोजन करके क्षितिमण्डल में विचरण करना चाहिए। यदि पशुसाधक के संस्पर्श में आ जाय तो तुलसीमाला धारण करके हरिमन्दिर में वास करना चाहिए, कथोपकथन और श्रीहरि का कीर्त्तन करना एवं हरिभाव परायण होकर पशुसाधक के निकट विचरण करना चाहिए। ३३—३४

यह विद्या अर्थात् साधनपद्धति अत्यन्त, अप्रकाश्य है। इस विद्या का प्रकाशन करने से साधक के साधना की सिद्धिहानि होती है। हे पार्वति ! वरं पशु के सम्मुख पूजा नहीं करनी चाहिए। साधक यदि केवलमात्र पुष्पाञ्जलित्रय प्रदान करके भी योनिपीठ की अर्चना करे, तो उसके लिए त्रिभुवन में और कुछ दुष्प्राप्य नहीं है। (पाठान्तर मतानुसार —त्रिभुवन में उसका समस्त अशुभ कर्म नष्ट हो जाता है)। ३५—३६

योनितन्त्र के छठें पटल का अनुवाद समाप्त।

१ वीरेण सह चर्वणं। वीरोच्छिष्टन्त चर्ब्बणं। २ विधत्ते तुलसीमालां। ३ देवि। ४ विद्या। ५ तस्याशुभानि कर्म्माणि नंश्यन्ति भुवनेत्रये।

सप्तमः पटलः

श्री महादेव उवाच—

अथ, वक्ष्ये महेशानि वीरसाधनमुत्तमम् ।
[1]यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः ।। १।।
दिव्यस्तु देववत् प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ।
यद्देशे विद्यते वीरः स देशः पूज्यते सुरैः ।। २।।
वीरदर्शनमात्रेण तीर्थ कोटिफलं लभेत् ।
वीरहस्ते जलं दत्त्वा मुक्तः कोटिकुलैः सह ।। ३।।
वीरं सन्तोष्य देवेशि किमलभ्यं जगत्रये ।
वीराणां जपकालस्त सर्वकालः प्रशस्यते[2] ।। ४।।
विल्वमूले श्मशाने वा प्रान्तरे वा गृहेऽथवा ।
एकलिङ्गे महायोनौ जप्यते साधकोत्तमैः[3] ।। ५।।
सर्वेषामन्नमाश्रित्य कुर्यात् स्वोदरपूरणं[4] ।
मद्यं[5]—मांस बिना देवि क्षणादूर्ध्वं न जीवति ।। ६।।

महादेव ने कहा — हे पार्वति ! अब मैं उत्तम वीरसाधनपद्धति के विषय में कहूँगा। इस साधना का ज्ञान लाभ होने से ही साधक जीवनमुक्त हो जाता है। १

दिव्यसाधकगण प्रायः देवतुल्य होते हैं। वीरसाधकगण उग्र एवं उद्धतमना होते हैं। जिस देश में वीरसाधक हों, देवगण भी उस देश की पूजा करते हैं। २

वीरसाधक के दर्शनमात्र से कोटितीर्थ के दर्शन का लाभ होता है। वीरसाधक को जलदान करने से दाता कोटिकुल के साथ मुक्त हो जाता है। ३

हे देवेशि ! वीर साधक को सन्तुष्ट करने से तीनों लोकों में कुछ भी अलभ्य नहीं होता । वीरगणों के जप के लिए सभी समय प्रशस्त काल होता है। ४

उत्तम वीरसाधक विल्वमूल, श्मशान, प्रान्तर प्रदेश, एकलिङ्ग मन्दिर या योनिपीठ में सदैव जप कर सकता है। ५

वीरमन्त्र का आश्रय लेकर वीरसाधक आहार ग्रहण कर उदरपूर्ति करे। मद्य एवं मांसाहार के बिना वीरसाधक एक क्षण से अधिक प्राण नहीं धारण कर सकता। ६

---

१ येषां। २ सर्वकाले प्रसंश्यते। ३ पूज्यते साधकोत्तमैः; जप्यते साधकोत्तमः। ४ सर्वेषां मनुमाश्रित्य कुर्याच्चोदरपूरणं। ५ मधू।

तस्मात् भुक्त्वा च पीत्वा च विहरेत् क्षितिमण्डले ।
सर्वेषामन्नमासाद्य[1] भोजनं चाकुतोभयम् ॥ ७॥
मैथुनञ्च महेशानि सर्वयोनौ प्रशस्यते[2] ।
कदाचिच्चन्दनेनापि कदाचित् सुरयापि वा ॥ ८॥
लेपनञ्च सदा कुर्यात् पङ्केन रजसापि वा[3] ।
सदानन्दमयो[4] दुर्गे[5] वीरश्चापि विराजते ॥ ९॥
तत् साधनमहं वक्ष्ये सर्वं सर्वार्थसाधनम्[6] ।
स्नानादिर्मानसः शौचो मानसः प्रवरो जपः ॥ १०॥
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ।
सर्वं एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ॥ ११॥
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि[7] ।
वस्त्रासनं स्नान[8]—गेह—देहस्पर्शादिकेष्वपि ॥ १२॥
शुद्धिं विचारयेन्नात्र[9] निर्विकल्पं मनश्चरेत् ।
दिक्काल—नियमो नास्ति स्थित्यादि—नियमो न च[10] ॥ १३॥

वीराचार के अनुसार पान और भोजन करके वीरसाधक क्षितिमण्डल में विचरण करता है। वह सभी प्रकार के अन्न को निर्विकार चित्त से भोजन करता है। हे महेशानि ! वीरसाधक के निकट मैथुन के लिए सभी योनि प्रशस्त होती है। वीर साधक अपनी देह पर कभी चन्दन, कभी सुरा, कभी पङ्क और कभी धूलि का अनुलेपन करता है। हे दुर्गे ! वीरसाधक सदा सदानन्दमयरूप में विराजमान रहता है। ७—९

मैं सर्वार्थसाधक वीरसाधन के विषय में कह रहा हूँ। इस साधना में स्नानादि समस्त शौचक्रिया भी मानसिक तथा श्रेष्ठ जप भी मानसिक होता है। इसमें मानसिक पूजा ही दिव्यपूजा तथा तर्पणादि भी मानसिक होती है। इस साधना में कालाकाल—विचार नहीं होता—सभी काल सभी कार्यों के लिए शुभ (प्रशस्त) होता है। इस साधना के लिए कोई काल किसी कार्य के लिए अशुभ नहीं होता। १०—११

इस साधना में दिवा, रात्रि, सन्ध्या या महानिशा के मध्य—किसी प्रकार का भेदाभेद या विशेष अविशेष नहीं है। इसमें वस्त्र, आसन, स्नान, गृह देहस्पर्श इत्यादि शुचि अथवा अशुचि प्रभृति किसी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिए। १२

इसमें निर्विकार एवं निर्विकल्प चित्त होकर साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। इसमें दिक, काल प्रभृति कोई विधि निषेध नहीं मानना होता, न तो, साधक की अवस्था नादि इत्यादि के विषय में किसी नियम को मानना होता है। १३

---

१ सर्वेषामन्नमाश्रित्य। २ प्रसंश्यते। ३ रजसा प्रिये। ४ सदानन्दमयं। ५ देवी। ६ माश्रित्य; सर्वसर्वज्ञसाधनं। ७ तथा निशि। ८ स्थान। ९ न चाचरेदत। १० दिव्यकालो नियमो नास्ति स्थित्यादि—नियमस्तथा।

न जपे काल[1]–नियमो नार्च्चादिषु[2] बलिष्वपि ।
स्त्रीद्वेषो नैन कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः ।। १४।।
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन पश्यन् यत्र कुत्रापि साधकः।
दत्त्वा भक्ष्यं जपेन्मत्रं भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि ।। १५।।
स्वेच्छानियमः संप्रोक्तो वीरसाधनकर्मणि ।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियः परमभूषणम्[3] ।। १६।।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्व–स्त्रियामपि ।
तदुक्तं भावसर्वस्वे[4] सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।। १७।।
वीरसिद्धि[5]–विधानन्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
द्रव्य–भक्षणकाले च आदौ शक्तौ निवेदयेत् ।। १८।।
अथवा प्रथमं भागं निक्षिपेज्जलमध्यतः ।
श्मशाने प्रान्तरे गत्वा शक्त्या युक्तोऽपि साधकः ।। १६।।
भुक्त्वा द्रव्यं जपेन्मत्रं जप्त्वा मैथुनमाचरेत्[6] ।
शुक्रोत्सरणकाले च श्रृणु पार्वति सुन्दरि ।। २०।।
योनितत्त्वं समादाय तिलकं क्रियते[7] यदि ।
शतजन्मार्ज्जितं पापं[8] तत्क्षणादेव नश्यति ।। २१।।

अर्चना, बलि जप प्रभृति किसी कार्य में किसी प्रकार का कालविचार या नियम–प्रतिपालन आवश्यक नहीं है। कभी स्त्री– द्वेश (ईर्ष्या, विराग या वैरभाव पोषण) प्रकट नहीं करना चाहिए। स्त्रियों की विशेष भाव से पूजा करनी चाहिए। यदि किसी स्थान पर कुलस्त्री का गमन, दर्शन, स्पर्शन् हो जाय तो उसे आहार प्रदान करके तथा स्वयं भी यथारुचि आहार ग्रहण करके साधक को मन्त्र जप करना चाहिए। वीराचार साधन के सभी कार्यों में स्वेच्छानियम का अवलम्बन करना चाहिए। स्वेच्छाचार ही वीरसाधन की पद्धति है—इसका अन्य कोई नियम नहीं है। किन्तु इस साधना में नारी ही (शक्ति ही) आराध्यदेवी, नारी ही प्राण एवं नारी ही साधक का आभूषण है— इसे सर्वदा स्मरण रखना चाहिए। १४—१६

सर्वदा कुलस्त्री सङ्गिनी के अन्यथा स्वस्त्री को सदा शक्तिरूपा में देखना चाहिए। इसे केवलमात्र तुम्हारे लिए सर्वस्व रूप से कहा है। यह विषय अन्यान्य समस्त तन्त्र में गुप्त है। १७

वीरसाधन पद्धति केवलमात्र तुम्हारे प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण प्रकाशित किया है। किसी द्रव्य के भक्षण के समय उसे शक्ति को निवेदित करना चाहिए अथवा भक्ष्यद्रव्य का प्रथमभाग जल में निक्षेप करना चाहिए। इसके बाद साधक शक्तियुक्त होकर प्रान्तर प्रदेश अथवा श्मशान भूमि में जाकर द्रव्य भक्षण कर मन्त्र जप करेगा। जप समाप्त होने पर मैथुन में प्रवृत्त होना चाहिए। हे पार्वति ! सुनो। शुक्रोत्सारण के समय योनितत्त्व ग्रहण करके, यदि उसके द्वारा साधक तिलक प्रदान करे, तो शतजन्मार्ज्जित पाप भी तत्काल विनष्ट हो जाता है। १८—२१

१ जपेत् काल। २ नार्चनादौ; स्पर्शादिकेषुच। ३ एव विभूषणम्। ४ यदुक्तं तव सर्वस्वं; भवसर्वस्थे। ५ वीरसङ्गिविधानन्त। ६ मारभेत्। ७ कुरूते। ८ अपि जन्मार्ज्जितैः पायैस्तत्क्षणादेव मुच्यते।

प्रेतभूमेरभावे च शून्यालयगतेहपि च[१]।
तदभावे जपेन्मन्त्री[२] निच्छिद्र–गृहमध्यतः।। २२।।
प्राणान्ते च महेशानि न वदेत् पशुसन्निधौ।
वीरनिन्दा वृथा पानं वृथा मैथुनमेव च।। २३।।
वृथान्नं वर्ज्जयेन्मन्त्री वीरसाधनकर्म्मणि।
मद्यं[३] मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च ।। २४।।
पञ्चतत्त्वं बिना दुर्गे न वीरो जायते भुवि[४]।
तस्मात् भुक्त्वा च पीत्वा च जपेन्मन्त्री महामनुम्।। २५।।
अति[५] गुह्यतमं देवि वीराणां साधनं प्रिये।
किं द्रव्य-साधनैर्लक्षैः किं वीरसाधनै[६]-स्तथा।। २६।।
किं कोटिक्षतजपैश्च पुरश्चर्या-शतैस्तथा[७]।
किं तीर्थसेवनैर्लक्षैः किंवा तन्त्रादि-सेवनैः[८]।। २७।।
किं पूजा शतलक्षैश्च किं दानैस्तपसापि च[९]।
भगं बिना महेशानि सर्वञ्चैव वृथा भवेत्।। २८।।
योनिपूजनमात्रेण सर्वसाधनभाग् भवेत्।
तर्पणं योनितत्त्वेन पितरः स्वर्गगामिनः।। २९।।

श्मशान तथा शून्यगृह में उसी भाव से जाकर कार्य करना चाहिए। उसी भाव से निःच्छिद्र गृह में वास करके कार्य करना चाहिए। २२

हे पार्वति ! प्राणान्त होने पर भी इस वीरसाधक पद्धति को पशुसाधक के समीप व्यक्त मत करना। वीरसाधना के लिए अकारण मद्यपान, वीर निन्दा, वृथा मैथुन एवं वृथा भोजन का सदा परिहार करना चाहिए। हे दुर्गे ! मद्य, मांस मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन इन पाँच तत्त्वों की उपेक्षा कर पृथ्वी पर कोई वीरसाधक नहीं हो सकता। अतएव इन पाँच तत्त्वों का भोग अथवा पान करके वीरसाधक महामन्त्र जप करने में प्रवृत्त होगा। २३–२५

हे देवि ! वीरगणों की साधन पद्धति अत्यन्त गोपनीय है। लाखों प्रकार के दिव्यसाध न एवं वीरसाधना का क्या फल है ? २६

शतकोटि जप अथवा पुरश्चरण का क्या फल है ? लाखों तीर्थसेवा अथवा तन्त्रादि सेवा का क्या फल ? शतलक्ष पूजा, दान या तपस्या आदि का क्या फल ? हे महेशानि ! आद्याशक्ति की पूजा के अतिरिक्त यह सब कार्य निष्फल हैं। केवलमात्र योनिपूजा द्वारा ही उक्त कार्य सफल एवं फलदायक होता है। स्वर्गवासी पितृगणों को भी योनितत्त्व द्वारा तर्पण करना चाहिए। २७–२९

१ शून्यालेय गतापि च। २ तदभावेन यजेन्मन्त्री। ३ मधु। ४ क्वचित्। ५ अस्ति। ६ किं दिव्यसाधनैः साधनेः; साधनस्तथा ७ शतैरपि। ८ तन्त्र निसेवनैः; किम्वा तन्त्र निषेवनैः। ९ दानस्तपसापि वा।

लालयेच्च सदा योनिं कुन्तला[१]-कर्षणादिना[२]।
क्रोड़े कृत्वा महायोनिं ताण्डवं कुरुते[३] यदि ।। ३०।।
तदां जन्मायुतै[४]: पापैमुक्तिः[५] कोटिकुलैः सह।
शिष्याणां[६] कन्यकायोनिं वधूयोनिं विशेषतः ।। ३१।।
केवलं गन्धपुष्पेण पूजयेद् भक्तिभावतः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा देवीलोके महीयते ।। ३२।।
अभावे गन्धपुष्पाभ्यां कारणेनापि पूजयेत् ।
पूजाकाले च देवेशि यदि कोऽप्यत्रागच्छेति[७] ।। ३३।।
दर्शयेद्वैष्णवीं पूजां[८] विष्णोर्न्यासं तथा स्तवम्।। ३४।।
इति योनितन्त्रे सप्तमः पटलः।। ७।।

कुन्तलाकर्षण प्रमृति कार्य द्वारा सर्वदा योनिका (शक्तिका) लालन करना चाहिए। महायोनि के कोड़ को ग्रहण करके यदि साधक ताण्डव नृत्य में प्रवृत्त हो, तो जन्मार्जित पापों का कोटिकुल के साथ मोक्षलाभ हो जाता है। विशेष भाव से शिष्याणी, कन्या तथा वधूयोनि का मात्र गन्धपुष्प द्वारा ही भक्तिभाव द्वारा पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से साधक इसलोक में सुखभोग करके मृत्योपरान्त देवीलोक में गमन करता है। ३०—३२

इन सभी स्थानों पर पूजा के लिए गन्धपुष्पादि का अभाव होने पर केवलमात्र कारण (सुरा) द्वारा पूजा सम्पन्न करना चाहिए। हे पार्वति ! यदि पूजा के समय पूजा स्थल पर कोई आ जाय, तो उसे वैष्णवी पूजा, विष्णुन्यास एवं विष्णुस्तव प्रदर्शन करना चाहिए (पाठान्तर में तत्पर्यानुसार —वैष्णवी मुद्रा)। ३३—३४

योनितन्त्र के सप्तम पटल का अनुवाद समाप्त।

---

१ कुन्तनं; कुन्तला २ वर्षणादिकं। ३ क्रियते। ४ जन्मार्जितैः। ५ मुक्ति स्तथा शुभं। ६ शिष्याणी। ७ यदि कोहत्र गच्छति। ८ दर्शयेत्। विष्णुन्यासं।

अष्टमः पटलः

श्रीमहादेव उवाच—

उर्वश्याद्याश्च[1] या नार्यः त्रिषु लोकेषु विद्यते[2] ।
वीरसाधनकाले च तासां[3] नाथस्त कौलिकः[4] ।। १।।
मैथुनेन विना मुक्तिर्नेति शास्त्रस्य निर्णयः[5] ।
श्रुति-स्मृति-पुराणानि कृतानि विविधं[6] मया ।। २।।
पशूनां बुद्धिनाशाय श्रणुष्व प्राणवल्लभे ।
परमानन्दरूपेण भजेत् योनिं सकुन्तलाम् ।। ३।।
विशेषतः कलियुगे योनिरूपां जगन्मयीम् ।
यो जपेत्[7] परया भक्त्या तस्य मुक्तिः करे स्थिता।। ४।।
साधकानां[8] सहस्राणि उपास्यानाश्च[9] कोटिशः ।
तेषां भाग्यवशेनापि कालीसाधन तत्परः ।। ५।।

महादवे बोले—त्रिभुवन में उर्वशी प्रभृति जो नारियाँ हैं, वीरसाधनकाल के समय कौलिक (कुल अथवा वंशपरम्परागत कुलाचार अथवा कुलधर्म अनुष्ठानकारी) उन सबको नाथेगा। १

मैथुन के बिना मुक्तिलाभ नहीं होता, ऐसा शास्त्र का निर्णय है। हे प्राणबल्लभे ! सुनो। पशुसाधकों की बुद्धिनाश के लिए मैंने श्रुति—स्मृति—पुराण जैसे विविधशास्त्रों का प्रणयन किया है। परमानन्दरूपिणी शकुन्तला योनि की (शक्ति की) भजना करना चाहिए। विशेषतः कलयुग में योनिरूपा जगन्मयी आद्याशक्ति को जो व्यक्ति परमशक्ति के समान भजता है (स्वतंत्र पाठ—त्रय लिखित शब्द (Version) त्रय तात्पर्यार्थानुसार—जप करे उसकी मुक्ति करतलगत मानना चाहिए। २—४

सहस्रों साधकों अथवा कोटिसंख्यक तपस्वीगणों में कदाचित एक व्यक्ति भाग्यवश कालीसाधन के लिए तत्पर होता है। ५

---

१ उर्वश्यादि च। २ निश्चिते। ३ तस्या। ४ कौलिकाः। ५ निश्चयः। ६ कृतानि विविधा। ७ भजेत्। ८ साधनानां। ६ उपास्यानाश्च।

कालीचजगतां माता सर्वशास्त्र-विनिश्चिता[1] ।
कालिका-स्मृतिमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते[2] ।। ६।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव सुनिश्चितम् ।
जप्त्वा महामनुं काल्याः कालीपुत्रो न संशयः।। ७।।
सा एव[3] त्रिपुरा[4] काली षोडशी भुवनेश्वरी ।
छिन्ना तारा महालक्ष्मी[5] र्मातङ्गी कमलात्मिका[6]।। ८।।
सुन्दरी भैरवी विद्या प्रकारान्यापि विद्यते[7] ।
दक्षिणा तारिणी सिद्धि नैंव चीनक्रमं विना ।। ६।।
यास्मिन मन्त्रे[8] यदाचारः स एव परमो मतः।
फलहानिस्त्वविश्वासात् तस्माद्भावपरो भवेत्[9]।। १०।।
यदत्र[10] लिखितं देवि तन्त्रे च योनिसंज्ञके[11] ।
तत् सर्वं साधकानाञ्च कर्त्तव्यं भावमिच्छता[12] ।। ११।।

कालीजगत की माता है। यह सभी शास्त्रों का सुनिश्चित सिद्धान्त है। काली का स्मरण करने मात्र से सभी पापों से मुक्ति हो जाती है। यह ध्रुवसत्य है। पुनः सत्य एवं सुनिश्चित सत्य है। कालीमन्त्र का जाप करने से साधक कालिकापुत्रतुल्य हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं। ६—७

जो काली है, वही त्रिपुरा, षोडशी, भुवनेश्वरी, तारा, महालक्ष्मी (महामाया), मातङ्गी, कमला, सुन्दरी, भैरवी प्रभृति विभिन्त विद्यारूपों में प्रकाशित हैं। चीनाचारक्रमोक्त पद्धति से भिन्न दक्षिणाकालिका भी तारा सिद्धिदायिनी नहीं होती। ८—६

जिस मन्त्र का जो रूप आचार विहित है वही उस मन्त्रसाधना की श्रेष्ठ पद्धति है। जो व्यक्ति इस विषय में विश्वास नहीं रखता उसको मन्त्रसिद्धि लाभ नहीं होता। अतएव सिद्धि अभिलाषा रखने वाले साधक को सर्वप्रयत्न भावपरायण [स्वतंत्र पाठ (version) — इस मर्मानुसार—भक्तिपरायण] होना चाहिए। १०

हे देवि ! इस योनितन्त्र में जो लिखा है, उसे भावपरायण होकर सिद्धि अभिलाषी साधक को अवश्य सम्पादन करना चाहिए। ११

---

१ सर्वशास्त्रे विनिर्मिता। २ तस्या स्मरणमात्रेण भवपाशैर्न बद्ध्यते। कालीस्मरणामात्रेण भवपाशैर्न बद्ध्यते। कालिकास्मृतिमात्रेण भवपाशैर्न बद्ध्यते कालीस्मरणमात्रेण भवपाशे न बध्यते। ३ जा एव। यत्र वात्र। पत्र वा। ४ त्रिपुरादेवी। ५ महामाया। ६ महातारा महालक्ष्मीः कमला अम्बिका तथा। ७ प्रकाराण्या प्रवर्त्तते। ८ मन्त्रे सदाचारः। ६ तस्माद्भक्ति परायणः। १० यत्र यत्र; शास्त्र। ११ योनिसङ्गमे; सिद्धये। १२ तत् सर्वं साधनानाञ्च कर्त्तत्यात् भवनिश्चिता।

जिह्वा योनिमुखं[1] योनिः योनिः श्रोत्रे च चक्षुषि ।
सर्वत्रापि महेशानि योनिचक्रं विभावयेत् ।। १२।।
योनिं विना महेशानि सर्वपूजा वृथा भवेत्[2] ।
तथा मन्त्राः न सिद्ध्यन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।। १३।।
सर्वां पूजां परित्यज्य योनिपूजां समाचरेत् ।
गुरुं विना महेशानि मद्भक्तो नापि सिद्ध्यते[3] ।। १४।।

ॐ योनिपीठाय नमः।।

इति योनितन्त्रे अष्टमः पटलः।। ८।।

समाप्तोहयं ग्रन्थः।

साधक अपनी जिह्वा, मुख [स्वतन्त्र पाठ (Version) – इसके तात्पर्यानुसार–मन] चक्षु एवं कान प्रभृति समस्त इन्द्रियों द्वारा योनि का ध्यान करेगा। हे पार्वती ! योनिपूजा के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की पूजा निष्फल है। मैं सत्य वचन कहता हूँ कि योनिपूजा से भिन्न मन्त्र भी सिद्ध नहीं होता। अतएव अन्य समस्त पूजा का परित्याग करके योनिपूजा (शक्तिपूजा) सम्पन्न करना चाहिए। हे ....पार्वति !

इस साधना में गुरुपदेश के बिना मेरा भक्त भी सिद्धिलाभ नहीं कर सकता। १२–१४

ॐ योनिपीठाय नमः।

योनितन्त्र के अष्टम पटल का अनुवाद समाप्त।

---

१ मनोयोनि; तस्माद्भावपरो भव। २ मद्भक्तो न च सिद्ध्यति इति पाठः क्वचित्। ३ यथो मन्त्रो न सिद्ध्यति।

।। ग्रन्थ समाप्त।।

योनिध्यानम्

अतिसुललितगात्रां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्रां,
जितजलदसुकान्तिं पट्टवस्त्रप्रकाशाम् ।
अभयवरकराढयां रत्नभूषातिभव्यां,
सुरतरुतलपीठे रत्नसिंहासनस्थाम् ।।
हरिहरविधिवन्द्यां बुद्धिशुद्धिस्वरूपां,
मदनरससमाक्तां कामिनीं कामदात्रीम्।
निखिलजनविलासोद्दामरूपां भवानीं,
कलिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि ।।

इति योनिं ध्यात्वा सम्पूज्य योन्युपीर ह्सौः इति योनिमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा जपं समर्प्य स्तवकवचादिकं पठेत्।

योनिस्तोत्रम्

श्रीदेव्युवाच–

भगवान सर्वधर्मज्ञ कुलशास्त्रार्थपारग।
सर्वं में कथितं नाथ न त्वेकं परमेश्वर।।
श्रीयोनेः स्तवराजं हि तथा कवचमुत्तमम्।
श्रोतुमिच्छामि सर्वज्ञ यदि तेऽस्ति कृपा मयि।।
सारभूतं महादेव निगमान्र्तगतं हर।
यदि न कथ्यते देव प्राणत्यागं करोम्यहम।।

दिवानिशि महाभाग ममाश्रुः पतितं भवेत्।
अतस्तद् देवदेवेश कथ्यतां मे दयानिधे।।

श्रीमहादेव उवाच–

श्रृणु पार्वति वक्ष्यामि देहत्यागं कथं कुरु।
अत्यन्तगोपनीयं हि निगमे कथितं पुरा।।
ब्रह्मविष्णुग्रहादीनां न मया कथितं पुरा।
अकथ्यं परमेशानि इदानीं किं करोमि ते।।
तव स्नेहेन बद्धोऽहं कथयामि तव प्रिये।
मातर्द्देवि महाभागे यदि कस्मै प्रकाश्यते।
शपथं कुरु मे दुर्गे यदि त्वं मत्प्रिया स्मृता।।
ब्रह्मा यदि चतुर्वक्त्रैः पञ्चवक्त्रैः सदाशिवः।
वर्णितुं स्तवराजञ्च न शक्नोति कदाचन।
सम्यग् वक्तुं न शक्नोमि संक्षेपात् कथयामि ते।।

अस्य श्रीयोनिस्तवराजस्य कुलाचार्य-ऋषिः कौलिकच्छन्दः। श्रीयोनिरूपा दशविद्यात्मिका देवता सर्वसाधने विनियोगः।

ॐ योनिरूपे महामाये सर्व्वसम्पतप्रदे शुभे।
कृपया सर्व्वसिद्धिं मे देहि देवि ! जगन्मयि।। १।।
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि ! ।। २।।
महाघोरे महाकालि ! कुलाचारप्रिसे सदा।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि ! जगन्मयि!।। ३।।
घोरदंष्ट्रे चोग्रतारे सर्वशत्रुविनाशिनि !।
कृपया सर्वसिद्धिं में देहि देवि जगन्मयि।। ४।।
योनिरूपा महाविद्ये सर्वदा मोक्षदायिनी।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि।। ५।।

जगद्धात्रि महाविद्ये जगदुद्धारकारिणि।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि।। ६।।
जगद्धात्रि महामाये योनिरूपे सनातनि।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि।। ७।।
जय देवि जगन्मातः सृष्टि स्थित्यन्तकारिणी।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि।। ८।।
सिद्धिदात्रि महामाये सर्वसिद्धिप्रदायिनि।
कृपया सर्वसिद्धिं में देहि देवि जगन्मयि।। ६।।
महालक्ष्मि महादेवि महामोक्षप्रदायिनि।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि।। १०।।
गौरी लक्ष्मीश्च मातङ्गी दुर्गा च नवचण्डिका।
वगलामुखी भुवनेशी भैरवी च तथा प्रिये।
छिन्नमस्ता च काली च योनिरूपा सनातनी।
कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देवि जगन्मयि।। ११।।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी।
नायिका विप्रचित्ताद्या अन्या या नायिका स्मृताः।
वसन्ति योनिमाश्रित्य ताभ्योऽपीह नमो नमः।। १२।।
अणिमाद्यष्टसिद्धिश्च वसत्यस्याः समीपतः।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु योगमोक्ष-प्रदायिनि।। १३।।
सर्वशक्तिमये देवि सर्वकल्मषनाशिनि।
हे योने हर विघ्नं मे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ में।। १४।।
आधारभूते सर्व्वेषां पूजकानां प्रियम्वदे।
स्वर्गपाताल वासिन्यै योनये च नमो नमः।। १५।।
विष्णुसिद्धिप्रदे देवि शिवसिद्धि प्रदायिनी।
ब्रह्मसिद्धिप्रदे देवि रामचन्द्रस्य सिद्धिये।
शक्रादीनाञ्च सर्वेषां सिद्धिदायै नमो नमः।। १६।।

इति ते कथितं देवि सर्वसिद्धि प्रदायकम्।
स्तोत्रं योनेर्न्महेशानि प्रकाशयामि ते प्रिये।।
सर्वसिद्धिप्रदं स्तोत्रं यः पठेत् कौलिकः प्रिये।
लिखित्वा पुस्तके देवि रक्तद्रव्यैश्च सुन्दरि।।
तस्यासाध्यानि कर्म्माणि वश्यादीनि कुलेश्वरि।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति नास्त्येव भुवनत्रये।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय गाणपत्यं लभेन्नरः।।
रात्रौ कान्तासमारगेगे यः पठेत् साधकोत्तमः।
स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किं न साधयेत्।।
सालङ्कृतां स्वकान्ताञ्च लीलाहावविभूषिताम्।
रक्त वस्त्र परीधानां कृत्वा संपूज्य साधकः।
भोजयित्वा ततो देवि स्वयं भुञ्जीत तत्परः।।
मत्स्यमांसादिकान् भुक्त्वा क्रोड़े कृत्वा स्वयोषितम्।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सा दुर्गा स सदाशिवः।
भवत्येव न सन्देहो मम वक्त्राद्विनिर्गतम्।।
येन दत्तं मयि स्तोत्रं स एव मद्गुरुः स्मृतेः।
तस्यैव यदि भक्तिः स्यात् स भवेञ्जगदीश्वरः।।
नमोऽस्तु स्तवराजाय नमः स्तवप्रकाशिने।
यत्रास्ते स्तवराजोऽयं तत्रास्ते श्रीसदाशिवः।।
इति शक्तिकागमसर्वस्वे हरपार्वतीसंवादे
श्रीयोनिस्तवराजः समाप्तः।

योनिस्तोत्रम्

प्रकारान्तरम्

शृणु देवि सुर-श्रेष्ठे सुरासुर- नमस्कृते।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्तोत्रं हि सर्वदुर्लभम्।
यस्या व वोधनाद्देहे देही ब्रह्म-मयो भवेत्।। १।।

श्री पार्वत्युवाच—

शृणु देव सुरश्रेष्ठ सर्व-बीजस्य सम्मतम्।
न वक्तव्यं कदाचित्तु पाषण्डे नास्तिके नरे।। २।।
ममैव प्राण-सर्वस्वं लतास्तोत्रं दिगम्बर ।
अस्य प्रपठनाद्देव जीवन्मुक्तोऽपि जायते।। ३।।
ॐ भग-रूपा जगन्माता सृष्टि-स्थिति-लयान्विता।
दशविद्या-स्वरूपात्मा योनिर्मां पातु सर्वदा।।४।।
कोण-त्रय-युता देवि स्तुति-निन्दा-विवर्जिता।
जगदानन्द-सम्भूता योनिर्मां पातु सर्वदा।। ५।।
रक्त रूपा जगन्माता योनिमध्ये सदा स्थिता।
ब्रह्म-विष्णु-शिव-प्राणा योनिर्मां पातु सर्वदा।। ६।।
कार्त्रिकी-कुन्तलं रूपं योन्युपरि सुशोभितम्।
भुक्ति-मुक्ति-प्रदा योनिः योनिर्मां पातु सर्वदा।। ७।।
वीर्यरूपा शैलपुत्री मध्यस्थाने विराजिता।
ब्रह्म-विष्णु-शिव श्रेष्ठा[1] योनिर्मां पातु सर्वदा।। ८।।
योनिमध्ये महाकाली छिद्ररूपा सुशोभना।
सुखदा मदनागारा योनिर्मां पातु सर्वदा।। ९।।
काल्यादि-योगिनी-देवी योनिकोणेषु संस्थिता।
मनोहरा दुःख लभ्या योनिर्मां पातु सर्वदा।। १०।।

---

१ प्राणा।

सदा शिवो मेरु-रूपो योनिमध्ये वसेत् सदा।
कैवल्यदा काममुक्ता[1] योनिर्मां पातु सर्वदा।। ११।।
सर्व-देव स्तुता[2] योनिः सर्व-देव-प्रपूजिता।
सर्व-प्रसवकर्त्री त्वं योनिर्मां पातु सर्वदा।। १२।।
सर्व-तीर्थ-मयी योनिः सर्व-पाप प्रणाशिनी।
सर्वगेहे[3] स्थिता योनिः योनिर्मां पातु सर्वदा।। १३।।
मुक्तिदा[4] धनदा देवी सुखदा कीर्तिदा तथा।
आरोग्यदा वीर-रता पञ्च-तत्त्व-युता सदा[5]।। १४।।
योनिस्तोत्रमिदं प्रोक्तं यः पठेत् योनि-सन्निधौ।
शक्तिरूपा महादेवी तस्य गेहे सदा स्थिता।। १५।।
तीर्थ पर्यटनं नास्ति नास्ति पूजादि-तर्पणम्।
पुरश्चरणं[6] नास्त्येव तस्य मुक्तिरखण्डिता।। १६।।
केवलं मैथुनेनैव शिव-तुल्यो न संशयः।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं मम वाक्यं वृथा नहि।। १७।।
यदि मिथ्या मया प्रोक्ता तव हत्या-सुपातकी।
कृताञ्जलि-पुटो भूत्वा पठेत् स्तोत्रं दिगम्बर !।। १८।।
सर्वतीर्थेषु यत् पुण्यं लभते च स साधकः।
काल्यादि-दश विद्याश्च गङ्गादि-तीर्थ-कोटयः।
योनि-दर्शन-मात्रेण सर्वाः साक्षान्न संशय।। १९।।
कुल-संभव-पूजायामादौ चान्ते पठेदिदम्।
अन्यथा पूजनाद्देव रमणं मरणं भवेत्।। २०।।
एकसन्ध्यां त्रिसंध्यां वा पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः।
निशायां सम्मुखे-शक्त्याः स शिवो नात्र संशयः।। २१।।

इति निगमकल्पद्रुमे योनि स्तोत्रं समाप्तम्।।

---

१ रता। २ युता। ३ देहे। ४ भुक्तिद। ५ प्रदा। ६ पुरश्चर्यापि।

योनिकवचम्

देव्युवाचा—

भगवन् श्रोतुमिच्छामि कवचं परमाद्भुतम्।
इदानीं देवदेवेश कवचं सर्वसिद्धिदम्।।

महादेव उवाच—

शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि अतिगुह्यतमं प्रिये।
यस्मै कस्मै न दातव्यं दातव्यं निष्फलं भवेत्।।

अस्य श्रीयोनिकवचस्य गुप्तऋषिः कुलटाच्छेन्दा
राजविघ्नो त्पातविनाशे विनियोगः।

ह्रीं योनिर्म्मे सदा पातु स्वाहा विघ्नविनाशिनी।
शत्रुनाशात्मिका योनिः सदा मां रक्ष सागरे।।
ब्रह्मात्मिका महायोनिः सर्वान् प्ररक्षतु।
राजद्वारे महाघोरे क्रीं योनिः सर्वदावतु।।
हुमात्मिका सदा देवी योनिरूपा जगन्मयी।
सर्वाङ्गं रक्ष मां नित्यं सभायां राजवेश्मनि।।
वेदात्मिका सदा योनिर्वेदरूपा सरस्वती।
कीर्त्तिं श्रीं कान्तिमारोग्यं पुत्रपौत्रादिकं तथा।।

रक्ष रक्ष महायोने सर्वासिद्धि प्रदायिनी।
राजयोगात्मिका योनिः सर्वत्र मां सदावतु।।
इति ते कथितं देवि कवचं सर्वासिद्धिदम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं राजोपद्रवनाशकृत्।।
सभायां वाक्पतिश्चैव राजवेश्मनि राजवत्।
सर्वत्र जयमाप्नोति कवचस्य जपेन हि।।
श्रीयोन्याः सङ्गमे देवीं पठेदेनमनन्यधीः।
स एव सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा।।
मातृकाक्षरसंपुटं कृत्वा यदि पठेन्नरः।
भुङ्क्ते च विपुलान् भोगान् दुर्गया सह मोदते।।
इति गुह्यतमं देवि सर्वधर्म्मोत्तमोत्तमम्।
भूर्जे वा ताड़पत्रे वा लिखित्वा धारयेद् यदि।।
हरिचन्दनमिश्रेण रोचना-कुङ्कमेन च।
शिरवायामथवा कण्ठे सोऽपीश्वरो न संशयः।।
शरत्काले महाष्टम्यां नवम्यां कुलसुन्दरि।
पूजाकाले पठेदेनं जयी नित्यं न संशयः।।
इति शक्ति कागमसर्वस्वे हरगौरीसंवादे
श्रीयोनिकवचं समाप्तम्।

कुण्डलिनीस्तोत्रम्

श्रीशिव उवाच—

ॐ तडित्कोटिप्रभदीप्ति-चन्द्रकोटि सुशीतलाम्
सार्द्धत्रिवलयाकार- स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।। १।।
उत्थापयेन्महादेवीं महारक्तां मनोन्मनीम्।
श्वासोच्छ्वासादुद्गच्छन्तीं द्वादशाङ्गुलरूपिणीम्।। २।।
योगिनीं खेचरीं वायुरूपां मूलाम्बुजस्थिताम्।
चातुर्वर्णस्वरूपां तां वकारादि- समस्तकाम्।। ३।।
कोटि कोटि- सहस्रार्क-किरणोज्ज्वलमोहिनीम्।
महासूक्ष्मपथप्रान्त-रान्तरान्तर-गामिनीम्।। ४।।
त्रैलोक्यरक्षितां वाक्य-देवताशब्दरूपिणीम्।
महाबुद्धिप्रदां देवीं सहस्रदलगामिनीम्।। ५।।
महासूक्ष्मपथे तेजोमयीं सत्यस्वरूपिणीम्।
कालरूपां ब्रह्मरूपां सर्वत्र सर्वविन्मयीम्।। ६।।
जन्मोद्धारिणी रक्षिणीह तरुणी वेदादिबीजादिना
नित्यं चेतसि भाव्यते भुवि कदा मद्वाक्यसञ्चारिणी।
मां पातु प्रियदा सदा सविपदं संख्यातय श्रीधरे
धात्री त्वं स्वयमादिदेववनिता दीनातिदीनं परम्।। ७।।
रक्ताभामृत चन्द्रिका लिपिमयी सर्पाकृतिर्निद्रिता
जग्रद्धर्म-समाश्रिता भगवती त्वं ्वांशलोकाश्रया।
मांसोद्गन्धक-दोषजालजड़ितं वेदादिकार्यान्वितं
संपाल्यामल - कोटिचन्द्रकिरणे नित्यं शरीरं कुरु।। ८।।

सिध्यर्थी निजदोषवित् खलगति-र्व्याधीयते विद्यमा
कुण्डला कुलमार्गयुक्तनगरी सायाह्नमाज्ञाश्रया।
यद्येवं भजति प्रभात समये मध्याह्नकालेऽथवा
नित्यं यः कुलकुण्डली-निजपदाम्भोजं स सिद्धो
भवेत्।। ६।।

यो वाकाश्चतुर्द्दलेऽतिविमले वाञ्छाफलोन्मूलके
नित्यं सम्प्रति नित्यदेशघटिता सङ्केतिता भाविता।
विद्या कुन्तलमालिनी स्वजननी सारक्रिया भाव्येत,
यै-स्तैः सिद्धकुलोद्भवैः प्रणतिभिः कीर्त्त्या परं
शम्भूभिः।। १०।।

वाचा शङ्करमोहिनी त्रिवलयाच्छायापटोद्गामिनी
संसारादिमहासुखप्रहननी नेत्रस्थिता योगिनी।
सर्बाग्रन्थिविनोदिनी सुभुजगा सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा
ब्रह्मज्ञानविनोदिनी कुलकुठाराघातिनी भाव्यते।। ११।।

वन्देश्रीकुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः सार्द्धं स्वयम्भूप्रियां
प्रवेष्टयासुरसारचित्तचपला वाला वला निष्फला।
या देवी परिभाति वेदबदना सम्भावना भावना
तामिष्टां शिरसि स्वयम्भुवनितां सम्भावयामि
क्रियाम्।। १२।।

वाणी कोटिमृदङ्गनादनदना निःश्रेणिकोटिध्वनिः
प्राणेशी रसधाममूलक मलोल्लासैकपूर्णानना।
आषाढ़ोद्भवमेघराजनियुतध्वान्तान्तरस्थायिनी
माता सा परिपातु सूक्ष्मपथगे मां योगिनं
शङ्करु।। १३।।

त्वामाश्रित्य नराव्रजन्ति सहसा बैकुण्ठकैलासयो-
रानन्दैक विलासिनीं शशिपदानन्दाननाकारिणीम्।
मातः श्रीकुलकुण्डलि प्रियकले काले कुलोद्दीपने
भूतस्थां प्रणमामि रुद्रवनितां मामुद्धरत्वं
पथि।। १४।।

कुण्डलीशक्तिमार्गस्थं स्तोत्राष्टकं महाफलम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स योगी भवति
ध्रुवम्।। १५।।

क्षणादेव हि पाठेन कविनाथो भवेदिह।
परत्र कुण्डलीयोगाद् ब्रह्मलीनो भवेन्महान्।। १६।।

इति ते कथितं नाथ कुण्डलीकोमलस्तवम्।
एतत्स्तोत्र प्रसादेन देवेषु गीष्पतिगुरुः ।। १७।।

सर्वे देवाः सिद्धियुक्ता अस्याः स्तोत्रप्रसादतः।
द्वापरार्द्धचिरंजीवी ब्रह्मा सर्वसुरेश्वः।। १८।।

त्वञ्चापि मम सन्निध्ये स्थितो भगवतीपतिः।
मां बिद्धि परमां शक्तिं स्थूलसूक्ष्मस्वरूपिणीम्।। १६।।

सर्वप्रकाशकरणीं विन्ध्यपर्वतवासिनीम्।
हिमालयसुतां सिद्धां सिद्धमन्त्रस्वरूपिणीम्।। २०।।

वेदान्तशक्तितन्त्रस्थां कुलतन्त्रार्थगामिनीम्।
रुद्रयामलमध्यस्थां स्थितिस्थायक भावनाम्।। २१।।

पञ्चमुद्रास्वरूपाञ्च शक्तियामलमलिनीम्।
रत्नमालावलाकाढ्यां चन्द्रसूर्यप्रकाशिनीम्।। २२।।

सर्वभूतमहाबुद्धीदायिनीं दानवापहाम्।
स्थित्युत्पत्तिलयकरीं करुणासागरस्थिताम्।। २३।।
महामोहनिवासाढ्यां दामोदरशरीरगाम्।
छत्रचामररत्नाढ्यांमहाशलकरां पराम्।। २४।।
ज्ञानदां बुद्धिदां विद्यां रत्नमालाकलापदाम्।
सर्वतेजः स्वरूपां मामनन्त कोटि विग्रहाम्।। २५।।
दरिद्र धनदां लक्ष्मीं नारायणमनोरमाम्।
सदा भावय शम्भो त्वं योगनायकपण्डित।। २६।।
इति श्रीरुद्रयामले उत्तरखण्डे कुण्डलिनीस्तोत्रं समाप्तम्।

प्रकीर्णांशः

अथ योनिमुद्रालक्षणम्, तदुक्तं-यन्त्रमन्त्रावल्याम्।

देव्युवाच—

योनिमुद्रा च कथिता यत्नेता न प्रकाशिता।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि मुद्रायाश्चैव लक्षणम्।।
योनिमुद्रा च किं नाम फलं तस्याश्च किं प्रभो[1]।
विधानं किं स्वरूपश्च कथयस्व जगत् प्रभो !।।

श्री शिव उवाच—

शृणु देवि ! महाभागे ! मुद्रां ज्ञानस्वरूपिणीम्।
यां ज्ञात्वा साधकाः सर्वे ज्ञानपीयूषसागरे।।
निमज्जन्ति कुलैः सार्द्धं सकृदभ्यासमात्रतः।।
षण्णवत्यङ्गुलायामं शवीरमुभयात्मकम्।।
गुद-ध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद् द्वयङ्गुलं प्रिये !।
तस्य द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम्।।
नाड्यस्तत्र समुत्पन्ना मुख्यास्तिस्तस्तु भाविनि !।
इड़ा वामे स्थिता नाड़ी पिङ्गला दक्षिणे स्थिता।।
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्ना वंशमाश्रिता[2]।
पादाङ्गुष्ठद्वयं याता शिखाम्यां शिरसा पुनाः।।
ब्रह्मस्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी।
तस्या मध्यगता नाड़ी चित्राख्या योगिवल्लभा।
ब्रह्मरन्ध्रं विदुस्तस्यां[3] पद्मसूत्रनिभं परम्।
आधारांश्च विदुस्तत्र मतभेदादनेकधा।।
दिवामार्गमिदम् प्राहुरमृतानन्दकारणम्।
इड़ायां सञ्चरेच्चन्द्रः पिङ्गलायां दिवाकरः।।

---

१ कीदृशम्। २ पृष्ठवंशगा। ३ तन्त्र।

ज्ञातौ योगनिदानज्ञैः सुषुम्नायाश्च तावुभौ[१]।
आधारकन्दमध्यस्थं त्रिकोणमतिसुन्दरम्।।
त्रिकोणमध्ये देवेशि ! कामबीजञ्च सुन्दरम्।
कामबीजोद्भवन्तत्र स्वयम्भूलिङ्गमुत्तमम्।।
तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता।
परिस्फुरति सर्वात्मा सुप्ताहि-सदृशाकृतिः।।
विभर्ति कुण्डलीशक्तिरात्मानं हंसमाश्रिता।
हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणा नाड़ी-समाश्रयाः।।
आधारादुद्गतो वायुर्यथावत् सर्वदेहिनाम्।
देहं व्याप्य स्वनाड़ीभिः प्रयाणं कुरुते वहिः।।
द्वादशाङ्गुलमानेन तस्मात् प्राणः समीरितः।
रम्ये मृद्वासने शुद्धे पटाजिनकुशोत्तरे।।
बद्धवैकमासनं योगी योगमार्गपरो भवेत्।
इड़याकर्षये द्वायुं वाह्यं तयैव मुद्रया।।
धारयेत् पूरितं तेन उभाम्यां कुम्भकेन च।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेच्च शनैः शनैः।।
भूयो भूयः क्रमात्तस्य प्रभ्यासेन समाचरेत्।
एवमभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः।।
मध्यम .... कम्पनं युक्ता भूमिदेशात् परो मतः।
एवं क्रमेण नाड़ीनां शोधनं कल्पयेद्बुधः।।
ततो गुह्ये वामपार्ष्णिं हे देवि ! विनिवेशयेत्।
तस्योपरि महादेवि ! दक्षपार्ष्णिं निवेशयेत्।।
ऋजुकायाशिरोग्रीवः काकचञ्चुपुटेन च।
आकारेण बहिर्वायुं जाठरं परिपूरयेत्।।
अङ्गुलीभिर्दृढ़ं बद्धा कारणानि समाहितः।
अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोते तर्जनीभ्यां विलोचने।।

---

१ शृणु सर्वे विधानञ्च सुषुम्नायाश्च तावुभौ।

नासारन्ध्रे च मध्याभ्यामन्याभिर्वदनं दृढ़म्।
बद्धात्मप्राणमनसामेकत्वं समनुस्मरन्।।
धारयेन्मारुतं सम्यक् योगोऽयं योगिवल्लभः।
नादः स जायते सम्यक् क्रमादभ्यस्यतः शनैः।।
मत्त-भृङ्गावली-गीत-सदृशं प्रथमो ध्वनिः।
वंशीकांस्यानिलापूर्ण- वंशध्वनिनिभोऽपरः।।
घण्टारबसमः पश्चात् घनमेघस्वनोऽपरः।
प्रसुप्त-भुजगाकारां कुण्डलीं पवदेवताम्।।
सुषुम्नामुखमाविश्यावेष्ठितां परिचिन्तयेत्।
कन्दावस्थित-योन्यान्तु क्रमन्तं रक्तवर्णकम्।।
कामं शिवस्वरूपञ्च चिन्तयेत् साधकोत्तमः।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् चित्कलां हंसमाश्रिताम्।।
प्रदीपकलिकाकारां कुण्डल्याभेदरूपिणीम्।
चित्कलया कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम्।।
हंसेन च महादेवी ब्रह्मरन्ध्रं नयेत् सुधीः।
षट्चक्र-सन्धि-मार्गेण सुषुम्ना-वर्त्मना तथा।।
ऊद्ध्वं नयेत् कुण्डलिनीं जीवात्म-सहिता पराम्।
आधारोस्थित-मारुतान् ब्रह्मरन्ध्रे शनैःशनैः।।
तेनैव मरुता देवि ! पद्मान्यूर्ध्व मुखानि च ।
मारयेत् साधको योगी ज्ञानमात्रेण चेतसा।।
आधारकन्दे पद्मं वै वेदपत्रं सुशोभनम्।
स्वाधिष्ठाने लिङ्गमूले षड्दलं परिचिन्तयेत्।।
मणिपूरे नाभिदेशे दिग्दलं सुरसुन्दरि !।
अनाहते हृदि ध्यायेत् द्वादशारं सुलक्षणम्।।
विशुद्धाख्ये महाचक्रे षोडशच्छदपङ्कजम्।

भ्रुवोर्मध्ये महापद्ममाज्ञाख्ये द्विदलं तथा।।
आधारदीनि चक्राणि भित्वा तेजः-स्वरूपिणीम्।
ब्रह्मरन्ध्रे नयेदेनां कुण्डलीं परदेवताम्।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
परमात्मा शिवश्चेव षट्शिवाः परिकीर्त्तिताः।।
डाकिनी लाकिनी चैव राकिणी शाकिनी तथा।
काकिनी हाकिनी चैव एताः षट्चक्रदेवताः।।
एतानि उह्य षट्चक्रे ब्रह्मत्वेन सुरेश्वरि !।
ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कुण्डलीं स्थापयेद्बुधः।।
परमात्मा शिवश्चैव ब्रह्मपद्मस्थितः प्रभुः।
कुण्डली शक्तिरूपा च परमात्मा शिवः स्वयम्।।
वैष्णवस्य च शैवस्य शाक्तस्य च वरानने !।
शिवशक्त्योः समायोगात् महाप्रज्ञा प्रजायते।।
पृथिव्यादीनि भूतानि वीरभावेण निलयेत्।
तत्रैव परमेशानि चन्द्रमण्डलमेव च।।
अमृतस्य परं स्थानं ज्ञानपीयूष-सागरम्।
तस्माद्विनिर्गतां ....
तत्संसर्गाच्च चक्राणि तेजोरूपाणि ....।
सहस्रारे महापद्मे चामृतं विनिवेशयेत्।।
तेनामृतेन संप्लाव्य कुण्डली परदेवताम्।
तेनैव वर्त्मना देवीं स्वस्थानमानयेत् पुनः।।
सोऽहमित्यात्मनात्मानं भावयेत् साधकोत्तमः।
षट्चक्र देवतायास्तु लोली भूतामृतेन च।।
चिन्तयित्वा महापद्मे स्वस्वस्थाने निवेशयेत्।
ततस्तु चित्रिणीनाड्यामक्षमालां विभावयेत्।।

पञ्चाशन्मातृकारूपा मातृका सा सरस्वती।
अकारादि-क्षकारान्ता अक्षमाला प्रकीर्त्तिता।।
क्षकारं मेरुरूपन्तु लंघयेन्न कदाचन।
अनुलोमविलोमस्थ - क्लिप्तया वर्णमालया।।
आदि-लान्त-लादि आन्त-क्रमेण परमेश्वरि !।
अष्टोत्तरशतं मूल-मंत्र ज्ञानेन संजयेत्।।
मनसा चेन्मनुं जप्त्वा मंत्र- सिद्धो भवेद् ध्रुवम्।
अष्टोत्तर-शते जापे आदौ ल्कीवं समुच्चरेत्।।
.............रूपेणैव पुनः ल्कीवं.............
वर्णानामष्टवर्गेण अष्टवर्गं जपेत् सुधीः।
अकचटतपयशाः इत्येवं चाष्टवर्गतः।।
अनया मुद्रया देवि ! छिन्नादिदोष-शान्तये।
मासमेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी जितेन्द्रियः।।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटि-जपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते।।
योनिमुद्रा शक्तिरूपा यत्र नास्ति महेश्वरि।
...........पूजाहोमादि[illegible]श्च यत्।।
शक्तिहीनं गुहं प्राप्य शक्तिः शिष्ये कृतः प्रिये।
मूलछिन्ने द्रुमे ! कुतः पुष्पफलादिकम्।
मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।।
न सिध्यन्ति वरारोहे ! कल्पकोटिजपादपि।
योनिमुद्रा महामुद्रा ज्ञातव्या यत्नतः सदा।।

इति यन्त्रमन्त्रावल्यां योनिमुद्रा-लक्षणं समाप्तम्